मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 126 ● वर्ष 14, अंक 2 ● अप्रैल 2024 ● दस रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

चुनाव में मेहनतकशों के स्वतन्त्र पक्ष को मज़बूत करने का निर्णय!! 5

सरकार का बेशर्म ऐलान : बेरोज़गारी जैसी समस्याओं को हल करने की उम्मीद सरकार से न करें! 6

फ़िलिस्तीन मुक्ति संघर्ष और मध्य-पूर्व पर गहराते साम्राज्यवादी युद्ध के बादल 14

लोकसभा चुनाव 2024

हमारी चुनौतियाँ, हमारे कार्यभार, हमारा कार्यक्रम

सम्पादकीय अग्रलेख

जब तक 'मज़दूर बिगुल' का यह अंक आपके हाथों में पहुँचेगा, तब तक लोकसभा चुनाव 2024 के लिए पहले दौर का मतदान हो चुका होगा। हालाँकि इस अंक को आप तक पहुँचाने में हुई देरी के लिए हम माफ़ी चाहते हैं।

इन चुनावों में देश की आम जनता के सामने, यानी मज़दूरों, अर्द्धसर्वहारा वर्ग, ग़रीब किसानों, और निम्न मध्यवर्ग के लोगों के सामने, क्या चुनौतियाँ हैं? उनके क्या कार्यभार हैं? उनका क्या कार्यक्रम होना चाहिए? इसके बारे में बात करना इस समय सर्वाधिक प्रासंगिक है।

देश की अट्ठारहवीं लोकसभा के लिए चुनाव एक ऐसे समय में होने जा रहे हैं, *जब हमारे देश में फ़ासीवादी उभार एक नये चरण में पहुँच चुका है।* 2019 से 2024 के बीच ही राज्यसत्ता के फ़ासीवादीकरण और समाज में फ़ासीवादी सामाजिक आन्दोलन का उभार *गुणात्मक रूप से नये चरण में गया है।* ग़ौरतलब है कि किसी देश में फ़ासीवादी सामाजिक आन्दोलन का उभार और राज्यसत्ता का फ़ासीवादीकरण एक *प्रक्रिया* होती है, कोई *घटना* नहीं जो किसी निश्चित तिथि पर घटित होती है। इसलिए इसे समझा भी एक प्रक्रिया के तौर पर ही जा सकता है, जो कई चरणों और दौरों से गुज़रती है।

2019 से 2024 के बीच में नया क्या हुआ है? 2019 से 2024 के बीच फ़ासीवादी राजनीति और राज्यसत्ता के फ़ासीवादीकरण की एक बेहद विशिष्ट चारित्रिक अभिलाक्षणिकता, एक सबसे अहम ख़ासियत, बेहद साफ़ तौर पर उभरकर सामने आयी है। वह क्या है? आइये समझते हैं।

मालिकों, ठेकेदारों, धनी व्यापारियों, पूँजीवादी कुलकों-फ़ार्मरों, बिचौलियों, सट्टेबाज़ों, प्रापर्टी डीलरों के समूचे वर्ग, यानी पूँजीपति वर्ग का हर प्रकार का शासन निश्चय ही मेहनतकश वर्गों की क्रान्तिकारी ताक़तों, यानी कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शक्तियों का दमन करता है। चाहे कांग्रेस की सरकार रही हो, किसी तीसरे मोर्चे की सरकार रही हो, या फिर भाजपा की सरकार रही हो, मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी आन्दोलन व क्रान्तिकारी शक्तियों का दमन सभी ने किया है। हम भूले नहीं हैं कि तमाम जनविरोधी क़ानूनों को लाने से लेकर ऑपरेशन ग्रीन हण्ट जैसा राजकीय दमन का अभियान चलाने का काम कांग्रेस की सरकार ने किया था। *तो फिर एक फ़ासीवादी पार्टी के शासन और अन्य पूँजीवादी पार्टियों के शासन में अन्तर क्या है?*

पहला फ़र्क़ यह है कि एक फ़ासीवादी शासन जनता के आन्दोलनों, जनता की क्रान्तिकारी शक्तियों, जनता की माँगों का और भी ज़्यादा आक्रामक, बर्बर और तानाशाहाना तरीक़े से दमन करता है, सबसे नग्न और बेशर्म तरीक़े से पूँजीपति वर्ग और विशेष तौर पर बड़े पूँजीपति वर्ग की सेवा करता है। यह हम 2014 के बाद से ही देखते आ रहे हैं। *यह पहला फ़र्क़, अन्य कारकों से अलग, अपने आप में, एक मात्रात्मक अन्तर अधिक है।* लेकिन दूसरा फ़र्क़ उससे भी ज़्यादा अहम है और यह गुणात्मक अन्तर है।

दूसरा फ़र्क़ यह है कि एक फ़ासीवादी पार्टी का शासन क्रान्तिकारी विरोध को तो कुचलता ही है, *लेकिन वह हर प्रकार के*

(पेज 8 पर जारी)

फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई में क्यों 'इण्डिया' गठबन्धन नहीं हो सकता भाजपा का विकल्प?

● आदित्य

2024 लोकसभा चुनाव का बिगुल बज चुका है। सारी पार्टियाँ अपने उम्मीदवारों की घोषणा और चुनाव प्रचार करने में लग गयी हैं। फ़ासीवादी भाजपा इस खेल में एक क़दम आगे है। वह चुनाव प्रत्याशियों की घोषणा और प्रचार के अलावा अपने विपक्षियों को ख़रीदकर भाजपा में शामिल करने तथा ईडी और सीबीआई के छापे पड़वाकर उन्हें जेल में भरने का काम भी कर रही है। भाजपा की नीति ही यही है कि विपक्ष को हर तरह से तोड़ दो। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी! न विपक्ष में कोई रहेगा, न उन्हें कोई टक्कर देगा। फ़िर भी जो बचे-खुचे रह जायेंगे, उन्हें वे ईवीएम में छेड़छाड़ करके पूरा कर ही लेंगे। भाजपा की यह फ़ासीवादी नंगई आज पानी की तरह साफ़ हो चुकी है। भाजपा 2024 लोकसभा चुनाव जीतने के लिए हर जुगत भिड़ाने में लगी है। चाहे ईवीएम में छेड़छाड़ करने का मामला हो, विपक्षियों के खाते फ़्रीज़ करने का मामला हो या ईडी के छापे पड़वाने का, भाजपा किसी भी क़ीमत पर यह चुनाव जीतना चाहती है।

आज भाजपा का फ़िर से सत्ता में आना कितना ख़तरनाक हो सकता है यह बताने की ज़रूरत नहीं है। यह फ़ासीवादी सरकार पहले ही देश को जाति-धर्म में बाँटने में लगी है। दूसरी तरफ़ यह लगातार ऐसे मज़दूर-विरोधी और जन-विरोधी क़ानून ला रही है जिससे मालिकों के मुनाफ़े को बढ़ाया जा सके तथा सरकार के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने वालों को चुप कराया जा सके। ऐसे में सवाल यह बनता है कि अगर भाजपा नहीं तो फ़िर कौन?

क्या 'इण्डिया' गठबन्धन विकल्प हो सकता है?

आज देश में विकल्प के तौर पर 'इण्डिया' गठबन्धन को हमारे सामने पेश किया जा रहा है, जिसमें तमाम राष्ट्रीय और क्षेत्रीय विरोधी पार्टियाँ शामिल है। इनमें कांग्रेस, तृणमूल कांग्रेस, राजद, आप, डीएमके, एनसीपी, शिवसेना आदि पार्टियों के अलावा नकली लाल झण्डे वाली पार्टियाँ - सीपीआई, सीपीआई(एम), सीपीआई(एमएल) भी शामिल हैं। कहने को तो पहले पलटू कुमार (नीतीश कुमार) की जनता दल यूनाइटेड (जदयू) भी इस गठबन्धन का हिस्सा थी, लेकिन अपनी कुर्सी बचाने के लिए (और शायद ईडी के छापे पड़ने और केजरीवाल की तरह जेल जाने से बचने के लिए) पलटू चाचा ने फ़िर पलटी मारी और भाजपा के साथ गठजोड़ कर लिया। आपको पता हो कि नीतीश कुमार पहले भी कई दफ़ा ऐसा कर चुके हैं। यही हाल कमोबेश इस गठबन्धन की सभी पार्टियों

(पेज 11 पर जारी)

आँगनवाड़ी कर्मियों ने लोकसभा चुनाव में मज़दूरों-मेहनतकशों के स्वतन्त्र पक्ष को मज़बूत करने का निर्णय लिया!!

(पेज 5 से आगे)

8. "सर्वधर्म समभाव" की नकली धर्मनिरपेक्षता की जगह सच्चे धर्मनिरपेक्ष राज्य को सुनिश्चित करने के लिए क़ानून लाया जाये। किसी भी नेता या पार्टी द्वारा धर्म, समुदाय या आस्था का सार्वजनिक जीवन में किसी भी रूप में उल्लेख व इस्तेमाल करना दण्डनीय अपराध घोषित किया जाये।

9. आँगनवाड़ी कर्मियों को रिटायरमेण्ट सुविधाएँ दी जायें व ग्रेच्युटी दी जाये व रिटायरमेण्ट की आयु सीमा 65 वर्ष की जाये।

10. मिनी आँगनवाड़ी कार्यकर्ता को कार्यकर्ता का दर्जा और बराबर मानदेय दिया जाये।

11. आँगनवाड़ी कर्मियों को सवैतनिक सर्दी व गर्मी अवकाश और मातृत्व अवकाश दिया जाये।

12. दिल्ली व केन्द्र सरकार द्वारा आँगनवाड़ीकर्मियों को बेगार खटवाने के लिये 'सहेली समन्वय केन्द्र' व क्रेच खोलने के फ़ैसले वापस लिये जायें। आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों के कार्यदिवस को बढ़ाने का फैसला तत्काल वापस लिया जाये।

13. समेकित बाल विकास परियोजना में गैर सरकारी संस्थाओं (एनजीओ) की घुसपैठ और हस्तक्षेप पर तत्काल पाबन्दी लगायी जाये।

14. नयी शिक्षा नीति - 2020 वापस ली जाये व आई.सी.डी.एस. में किसी भी प्रकार के निजीकरण पर रोक लगायी जाये।

15. सभी आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं व सहायिकाओं को ई.एस.आई., पी.एफ़. व पेंशन जैसी सुविधाएँ मुहैया करायी जायें व सभी आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों के लिए सामाजिक सुरक्षा कार्ड जारी किये जायें।

16. आई.सी.डी.एस. योजना में रिक्त पदों पर पारदर्शी तरीक़े से तत्काल भर्ती की जाये। सुपरवाइज़र पद पर पदोन्नति (प्रमोशन) आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं में से ही की जाये और योग्य आँगनवाड़ी सहायिकाओं का 'प्रमोशन' कार्यकर्ताओं के तौर पर किया जाये।

17. जिन आँगनवाड़ीकर्मियों को 'पैनल' या 'लीव' पर रखा गया है, उन्हें तत्काल पारदर्शिता के साथ नियमित किया जाये।

18. आबादी के अनुसार नये केन्द्र खोलें जायें व 'अडिशनल चार्ज' का सिस्टम ख़त्म किया जाये।

19. फ़ोन और इण्टरनेट बिल का ख़र्च सरकार वहन करे और इसका भुगतान नियमित किया जाये।

20. 'पोषण ट्रैकर ऐप' बन्द किया जाये व लोकेशन और ऐप ज़रिये अनुपस्थिति की प्रणाली को ख़त्म किया जाये।

21. गोदभराई, अन्नप्राशन इत्यादि गतिविधियों के ख़र्चों का वहन विभाग करे और समय से भुगतान करे।

बहनो, हमारी यह सभी माँगें जायज़ हैं और हमारा हक़ हैं। चुनाव में हमारा एजेण्डा भी यही मसले हैं। और एक आँगनवाड़ीकर्मी के अलावा हम इस देश के नागरिक भी हैं। हम इस देश की उस 80 प्रतिशत आबादी का हिस्सा हैं जो इस देश को चलाने और बनाने का काम करती है। आज़ादी 77 सालों में हमने तमाम पार्टियों की सत्ता और स्कीम वर्कर्स के प्रति उनके रवैये को साफ़ देखा है। मौजूदा समय में जिस पार्टी की सत्ता ने मज़दूरों-मेहनतकशों का सबसे ज़्यादा दमन किया है, उनकी लूट को आसान बनाया है; उस भाजपा का इस लोकसभा चुनाव में हम पूर्ण वोटबन्दी का आह्वान करते हैं।

इस लोकसभा चुनाव के मद्देनज़र भी हमारे तैयार किये गये माँगपत्रक को अपने घोषणापत्र में शामिल करने वाली सिर्फ़ एक ही पार्टी है - भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI)। दिल्ली की जिन दो लोकसभा सीटों पर इस पार्टी के प्रत्याशी खड़े हो रहे हैं, वे न केवल स्कीमवर्करों के मसलों को उठा रहे हैं, बल्कि इस देश की मेहनतकश अवाम का सही मायनों में प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। यही वह पार्टी है जो हम जैसों, यानि मेहनतकशों के दम पर चलती है। हमें न केवल ख़ुद इनका समर्थन करने की, बल्कि एक बड़ी आबादी अपने परिचितों, रिशतेदारों और लाभार्थियों के बीच भी इनके लिए समर्थन जुटाने के लिए पूरी कोशिश करनी चाहिए। क्योंकि ये ही हमारी माँगों को संसद में उठाने का माद्दा रखते हैं और ये ही इस देश की 80 फ़ीसदी जनता का स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष खड़ा कर सकते हैं।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

करावल नगर (दिल्ली) के बादाम मज़दूरों की हड़ताल को मिली जीत

विजय जुलूस निकाल कर मनाया संघर्ष की जीत का जश्न!

● यूनियन संवाददाता

"हर हड़ताल पूँजीपतियों को यह याद दिलाती है कि ये मज़दूर ही हैं जो असली मालिक हैं -- वो मज़दूर जो अधिक से अधिक जोर-शोर से अपने अधिकारों की घोषणा कर रहे हैं। प्रत्येक हड़ताल मज़दूरों को यह याद दिलाती है कि उन्हें हताश होने की ज़रूरत नहीं है और वे अकेले नहीं हैं।" – लेनिन *(हड़तालों के बारे में)*

पूर्वी दिल्ली में करावल नगर के बादाम मज़दूरों ने 25 दिनों तक चली अपनी जुझारू हड़ताल के ज़रिये लेनिन की उपरोक्त बात को सही साबित किया और मालिकों को झुकने पर मज़बूर कर दिया। 26 मार्च 2024 का दिन दिल्ली के मज़दूर आन्दोलन के किसी भी विवरण में बादाम मज़दूरों की एक अहम जीत के नाम दर्ज़ होगा। अपनी उजरत बढ़वाने की माँग व बेहतर कार्यस्थितियों की माँग को लेकर हड़ताल पर बैठे बादाम मज़दूरों ने मालिकों के तमाम हथकण्डों को धराशायी किया। 25 दिनों की कामबन्दी से मालिकों को हुए नुकसान ने मज़दूरों को अपनी एकता और ताकत का एहसास दिलाया।

मालिकों को यूनियन के साथ जिन माँगों पर लिखित समझौता करना पड़ा वे निम्नलिखित हैं :

1. दिनांक 23 मार्च, 2024 से बादाम की गिरी छँटाई का रेट 2 रुपये प्रति किलो से बढ़ाकर 3 रुपए प्रति किलो किया गया।
2. हर माह की 1 से 7 तारीख़ तक मज़दूरी का भुगतान किया जायेगा।
3. हड़ताल खत्म होने के बाद किसी भी मज़दूर को काम से नहीं निकाला जायेगा।
4. बादाम छँटाई करने वाले मज़दूरों से छालना नहीं मरवाया जायेगा।
5. मशीन से बादाम तुड़ाई का रेट प्रति कट्टा 5 रुपये से बढ़ाकर 7 रुपए किया गया।
6. मज़दूरों का बकाया पैसा दिनांक 5 अप्रैल 2024 तक दे दिया जायेगा।
7. महिलाओं और पुरुषों के लिए अलग-अलग साफ़ टॉयलेट की व्यवस्था की जायेगी।
8. सभी मज़दूरों को सुरक्षा के सामान (अच्छी क्वालिटी का मास्क आदि) मुहैया कराये जायेंगे।

यूनियन द्वारा 26 मार्च को किये गये जीत के ऐलान के साथ गोदामों के ताले खुलने शुरू हुए और हड़ताली मज़दूर काम पर वापस लौटे। जीत के जश्न के दिन लाल झण्डे फहराते, लाल रंग उड़ाते और जोशीले नारों-गीतों के साथ निकले मज़दूरों ने करावल नगर की गलियों को गुँजा दिया। विजय जुलूस में गलियों-मोहल्लों से लेकर अलग-अलग चौक-चौराहों पर अपनी सभा जमाते जा रहे बादाम मज़दूरों ने न सिर्फ़ अपने संघर्ष की कहानी लोगों तक पहुँचायी बल्कि इस अँधेरे वक़्त में लड़ने की ज़रूरत का भी एहसास कराया। हड़ताल के दौरान बादाम मज़दूरों ने कई चुनौतियों का सामना किया। 2008, 2009 और 2013 की हड़ताल के बाद 2024 में हुई यह हड़ताल सफल रही मगर कुछ मायनों में प्रयास और बेहतरीन किये जा सकते थे जिसपर हम आगे चर्चा करेंगे।

इस शानदार हड़ताल ने भाजपा-आरएसएस से जुड़े मालिकों और उनकी गुण्डा वाहिनियों का मुकाबला बख़ूबी

किया। बादाम मज़दूरों के संघर्ष ने करावल नगर के मेहनतकशों के सामने तमाम पूँजीवादी पार्टियों और उनकी मालिकों के साथ गठजोड़ को सीधे तौर पर खोलकर रख दिया। भाजपा-आरएसएस की शह पर इस पूरे इलाके में चल रही गोदाम-मालिकों की गुण्डागर्दी को जहाँ एक तरफ़ मज़दूरों ने चुनौती दी वहीं दूसरी तरफ़ उनकी लूट को भी मानने से इन्कार कर दिया। उत्तर-पूर्वी दिल्ली के इस क्षेत्र में निगम पार्षद से लेकर विधायक,सांसद तक सभी भाजपा के हैं और इस पूरे मसले में मालिकों के साथ इनकी साँठ-गाँठ बिल्कुल साफ़ हो गयी।

हड़ताल के दौरान श्रम विभाग से लेकर पुलिस प्रशासन तक के मज़दूर-विरोधी चेहरे बादाम मज़दूरों के सामने और अधिक स्पष्ट हो गये। तमाम श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाकर ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े से इस इलाके में चलाये जा रहे बादाम उद्योग के असल सरगना भाजपा और आरएसएस के लोग हैं जिनके संरक्षण में यहाँ मज़दूरों की लूट और शोषण का बोलबाला है। करावल नगर मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में जारी हड़ताल के जरिये मज़दूरों ने अपनी कई माँगों पर न सिर्फ़ मालिकों को झुकाया और उन्हें यूनियन के साथ लिखित समझौते के लिये मज़बूर किया बल्कि भाजपा-आरएसएस के गुण्डा गिरोह का भी डटकर मुक़ाबला किया।

हड़ताल के दौरान आयी विपरीत परिस्थितियों में मज़दूरों ने हार नहीं मानी और मजबूती से लड़ते रहे। काम बन्द होने के साथ ही मालिकों के समूह ने मज़दूरों को तरह-तरह की धमकियाँ देनी शुरू कीं और झूठी अफ़वाहों के दम पर हड़ताल को कमजोर करने और तोड़ने की साज़िशें रची। हड़ताल के शुरुआती दौर में ही मालिकों ने बहुत बेशर्मी के साथ पूरे इलाके में पोस्टर लगाकर पिछले 12 सालों से बिना किसी बढ़ोतरी के मिल रही 2 रुपये प्रति किलो की मज़दूरी को और कम करके 1 रुपये और 1.5 रुपये करने की गीदड़ भभकी दी। उसके बाद वे लगातार मज़दूरों को काम पर वापस न रखने और गोदामों को अन्य इलाके में ले जाने की धमकी देते रहे।

इन सभी खोखली धमकियों को जब मज़दूरों ने धता बता दिया तो मालिकों ने पुलिस, क़ानून और गुण्डों के ज़ोर पर हड़ताल को तुड़वाने के लिये कई तिकड़में लगायीं। मज़दूर महिलाओं पर कायराना हमले करवाये, लोगों से उनके किराये के घर ख़ाली कराने का दबाव बनाने जैसी घटिया हरकतों पर उतारू हो गये मगर इससे भी हड़ताल कमज़ोर नहीं हुई। अपने सभी हथकण्डों को नाकाम होता हुआ देख मालिकों ने मज़दूरों के बीच क्षेत्रीय बँटवारा करना चाहा और उन्हें यूपी और बिहारी के नाम पर बाँटने की कोशिश की। सिर्फ़ यही नहीं अपने दलालों के जरिये मालिकों ने मज़दूरों को यूनियन नेतृत्व से काटने की चालें चलनी शुरू कीं। मालिकों के इन सभी चालों को नाकाम करते हुए हर क़दम पर बादाम मज़दूरों का संघर्ष और तेज़ होता गया।

दूसरी तरफ़ हर बीतते दिन के साथ हड़ताली मज़दूरों के घर में पैदा होते आर्थिक संकट से निपटने के लिये हड़ताल कोष की स्थापना की गयी। राशन से लेकर दवा-इला की बुनियादी ज़रूरत के लिए हड़ताल स्थल पर सामूहिक रसोई और मेडिकल कैम्प का आयोजन किया गया। यह हड़ताल पूरी तरह जनसहयोग के दम पर चलायी गयी। करावल नगर के नागरिकों और दिल्ली के इन्साफ़पसन्द छात्रों, चिकित्सकों, शिक्षकों ने भी हड़ताल के लिए सहयोग किया और मजदूरों की माँगों के साथ खड़े हुए।

इस हड़ताल ने यह साबित कर दिया कि अगर मेहनतकशों की एकजुटता को सही दिशा में क्रान्तिकारी नेतृत्व के साथ बढ़ाया जाये तो मालिकों की सभी चालों को शिकस्त दी जा सकती है।

बादाम मज़दूरों की हड़ताल में उपरोक्त सकारात्मक पहलुओं के अलावा कुछ कमियाँ भी रहीं जिसमें से एक प्रमुख कमी मज़दूरों के एक हिस्से को (मशीन चलाने वाले मज़दूर और मासिक वेतन पर काम कर रहे स्टाफ़) हड़ताल में सक्रिय भागीदार बनाने में कमी रही। इसका एक कारण पिछले लम्बे समय से यूनियन द्वारा मज़दूर आबादी में राजनीतिक प्रचार और शिक्षण-प्रशिक्षण की कमी थी। इस पर हड़ताल की विजय के बाद हुई बैठक में समाहार किया गया।

बादाम मज़दूरों की इस हड़ताल को दिल्ली की कई मज़दूर यूनियनों, छात्र व नौजवान संगठनों ने अपना समर्थन दिया। 23 मार्च (भगतसिंह,सुखदेव,राजगुरु के शहादत दिवस) के अवसर पर नौजवान भारत सभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष आशीष ने हड़ताली मज़दूरों को समर्थन दिया। इण्डियन फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन (IFTU) के साथियों ने भी हड़ताल में भागीदारी करते हुए अपनी बात रखी। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) ने भी हड़ताल को बिना शर्त समर्थन दिया। हड़ताल के समापन के मौक़े पर भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) की तरफ़ से भारत ने कार्यक्रम में शामिल होकर अपनी बात रखी। उन्होंने कहा कि "आने वाले लोकसभा चुनाव में मज़दूरों-मेहनतकशों को अपनी पार्टी के बैनर तले एक होना होगा। आज भाजपा से लेकर

(पेज 7 पर जारी)

"हड़तालें मज़दूरों को एकजुट होना सिखाती हैं; वे उन्हें दिखाती हैं कि मज़दूर पूँजीपतियों के ख़िलाफ़ तभी संघर्ष कर सकते हैं जब वे एकजुट हों। हड़तालें मज़दूरों को फैक्ट्री मालिकों के पूरे वर्ग और पुलिस-सरकार के ख़िलाफ़ समूचे मज़दूर वर्ग के संघर्ष के बारे में सोचना सिखाती हैं। यही कारण है कि समाजवाद के विचारों को मानने वाले हड़तालों को "युद्ध की पाठशाला" कहते हैं। एक ऐसी पाठशाला जिसमें मज़दूर श्रम करने वाले सभी लोगों की सरकारी अधिकारियों के जुए से और पूँजी के जुए से मानवता की मुक्ति के लिये अपने दुश्मनों से युद्ध करना सीखते हैं।" – लेनिन

लाइफ़ लौंग (धारूहेड़ा) के कारख़ाने में हुए भयानक विस्फोट में 16 मज़दूरों की मौत

अगर हम लड़ते नहीं, तो पूँजीवाद हमें ऐसी ही अमानवीय मौतें देता रहेगा

● शाम मूर्ति

पिछले 16 मार्च को शाम क़रीब 5:50 बजे धारूहेड़ा (जिला रेवाड़ी, हरियाणा) में स्थित दोपहिया व चार पहिया वाहनों के लिए कलपुर्जे बनाने वाली एक वेण्डर कम्पनी – लाइफ लौंग इण्डिया लिमिटेड के प्लाण्ट में डस्ट कलेक्टर में भयानक विस्फोट हुआ। इसकी वजह से आग लगी और अनेक मज़दूर उसकी चपेट में आकर झुलस गये। 16 ठेका मज़दूरों की मौत हो गयी और 50 से अधिक गम्भीर रूप से घायल हो गये। विस्फोट इतना भयंकर था कि कई किलोमीटर तक इसकी आवाज़ सुनायी दी। आसपास की कम्पनियों में खिड़की व दरवाज़े के शीशे तक टूट गये।

इस हादसे वाली जगह पर काम करने वाले कई मज़दूरों ने अपना नाम गुप्त रखने की शर्त पर आग लगने का कारण बताया। उन्होंने बताया कि इससे पहले भी दो दुर्घटनाएँ हो चुकी हैं। बार-बार इसकी शिकायत करने के बावजूद डस्ट कलेक्टर से लेकर अन्य कमियों व सुरक्षा मानकों का उल्लंघन पहले से जारी था। वहाँ पर कुल चार डस्ट कलेक्टरों में से सिर्फ़ एक ही काम कर रहा था और उस चालू डस्ट कलेक्टर की भी मानकों के आधार पर नियमित सर्विस नहीं होती थी। न ही इनकी कोई ऑडिट रिपोर्ट उपलब्ध है। यहाँ तक कि चारों डस्ट कलेक्टर आईएसआई मार्क के हैं या नहीं, इस पर भी सन्देह है। इसके अलावा चारों डस्ट कलेक्टरों में उचित दूरी बनाये रखने के बजाय, उन्हें क़रीब-क़रीब रखा गया था। साथ ही कई बिजली के तार खुले थे, जो सुरक्षा के लिहाज़ से आपराधिक लापरवाही है। इन कमियों के मौजूद रहने के साथ ही सोने में सुहागा यह कि कार्यस्थल पर लेआउट के अनुपात को नज़रन्दाज़ करते हुए कम जगह में ज़्यादा मशीनें लगायी गयी थीं व ज़्यादा सामान रखा गया था। इसके कारण इतनी कम जगह बची थी कि वहाँ से आने-जाने में अवरोध पैदा हो रहा था और इसी लिए विस्फोट होने के बाद मज़दूर जल्दी से बाहर नहीं निकल पाये और अनेक मज़दूर आग से बुरी तरह झुलस गये।

घायल मज़दूरों में कुछेक झुलसने के बावजूद किसी तरह रेंगकर, कुछेक नंगे बदन व कराहते हुए बाहर आ रहे थे। वहीं कुछेक झुलसे मज़दूरों के कपड़े उतारते और दवा लगाते हुए उनके शरीर की चमड़ी पपड़ी की तरह निकल रही थी। बहुत ही भयावह दृश्य था।

लाइफ लौंग इण्डिया लिमिटेड फैक्ट्री का यह प्लाण्ट गुड़गाँव से जयपुर तक फैली हरियाणा-राजस्थान की औद्योगिक पट्टी में स्थित है। यहाँ देश में विभिन्न ऑटो सेक्टर समेत औद्योगिक सेक्टरों का हब बनाया जा रहा है। यह वेण्डर कम्पनी ऑटो सेक्टर से लेकर इलेक्ट्रिक सेक्टर की लगभग 9 विभिन्न मदर व वेण्डर कम्पनियों के लिए पुर्जों का निर्माण करके सप्लाई करती है। इनमें हीरो, जनरल मोटर्स, लुकास टीवीएस लिमिटेड तथा पैनासोनिक, एक्साइड, लेग्रान्दे आदि शामिल हैं। इसका दूसरा प्लाण्ट हरिद्वार (उत्तराखण्ड) और तीसरा गुजरात में है। लाइफ लौंग कम्पनी का देश-विदेश में 12,000 करोड़ का कारोबार है। तब भी सुरक्षा मानकों में कटौती! इस पर कड़ी कार्रवाई क्यों नहीं हुई? उसे सार्वजनिक क्यों नहीं किया गया?

यह बात भी गौरतलब है कि धारूहेड़ा जैसे औद्यौगिक इलाक़े में लाखों मज़दूर काम करते हैं और अक्सर गम्भीर दुर्घटनाएँ होती रहती हैं लेकिन धारूहेड़ा में अभी तक कोई ट्रॉमा सेण्टर व बड़ा अस्पताल नहीं है। नतीजतन इलाज के लिए घायल मज़दूरों को रेवाड़ी के अलावा रोहतक पीजीआई तथा दिल्ली के सफ़दरजंग अस्पताल ले जाना पड़ा। तब भी 16 मज़दूर बच नहीं सके। ज़्यादातर मृतक व घायल ठेका मज़दूर यूपी, बिहार, दिल्ली के रहने वाले प्रवासी मज़दूर हैं। दो मज़दूरों (40+) को छोड़कर बाक़ी के मज़दूर युवा थे। इसमें कई नवविवाहित युवा मज़दूर भी थे जिनकी ज़िन्दगियों को मालिक के मुनाफ़े ने लील लिया।

इस दुर्घटना को महज़ लापरवाही कहना इस पर आपराधिक लीपापोती के समान है। वास्तव में यह नियमों व मानकों के उल्लंघन का एक अपराधिक मामला है। महज़ हल्की धाराओं के तहत कम्पनी के मालिकान और प्रबन्धन को खुला छोड़ना आने वाले दिनों में और नयी और बड़ी दुर्घटनाओं की ज़मीन तैयार करेगा। दोषियों को गिरफ़्तार न करना व कोई कड़ी कार्रवाई न करना मालिक वर्ग के प्रति सरकार और राज्यसत्ता की वर्गीय पक्षधरता ही दिखाता है।

मोदी सरकार मालिकों व प्रबन्धन के प्रति ऐसे अपराधों पर कार्रवाई के नियमों और क़ानूनों को यह बोलकर ख़त्म कर रही है कि इससे निवेशक हतोत्साहित हो जायेंगे! वास्तव में, तो पहले भी ये नियम और प्रावधान बेहद कमज़ोर और निष्प्रभावी थे, लेकिन अब उन्हें भी ख़त्म करने का काम मोदी सरकार कर रही है। यह अनायास नहीं है कि इन्हीं अरबपति कम्पनियों और पूँजीपतियों से भाजपा को इलेक्टोरल बॉण्ड के ज़रिये करीब सात हज़ार करोड़ रुपये का चन्दा मिला है! मज़दूरों को इस बात को गहराई से समझना चाहिए। और यह भी समझना चाहिए कि यही वजह है कि मोदी सरकार जनता को हिन्दू-मुसलमान के झगड़े और नकली गर्व और नकली शान की राजनीति में क्यों उलझा रही है।

दूसरी बात, कम्पनी के प्लाण्ट में कार्यरत मज़दूरों की संख्या 900 बतायी जा रही है, जबकि वास्तव में वहाँ एक ही जगह पर दो प्लाण्ट दिखाये जा रहे हैं। इसका घटना के रिकार्ड में कहीं जिक्र नहीं किया गया। वास्तव में दिखाये गये दोनों प्लाण्ट एक ही जगह पर हैं, इस तरह देखा जाये तो प्लाण्टों में मज़दूरों की संख्या दोगुनी है। इसमें 90% से ऊपर ठेका मज़दूर देखे जा सकते हैं। यानी बड़े स्तर पर श्रम क़ानूनों के उल्लंघन का मामला दर्ज होना चाहिए लेकिन ऐसा हुआ कि नहीं इसकी भी कोई जानकारी अभी तक सार्वजनिक नहीं हुई है।

इस समूची औद्योगिक पट्टी में देश में ऑटो सेक्टर के कुल उत्पादन का क़रीब 50 प्रतिशत उत्पादन होता है। यहाँ 90 प्रतिशत मज़दूर ठेका, पीस रेट व दिहाड़ी पर काम करते हैं। स्थायी प्रकृति के काम पर हेल्पर/अस्थायी भरती दिखाकर मशीनों पर दशकों तक खटाया जाता है। यहाँ पर कोई नियम-क़ायदा काम नहीं करता है। ऐसे में, यहाँ होने वाली औद्योगिक दुर्घटनाओं की स्थिति कितनी भयंकर होगी इसका सहज ही अन्दाज़ा लगा सकता है।

ऐसे ख़तरनाक कार्यों के लिए सबसे अरक्षित मज़दूरों को (ठेका, दिहाड़ी, पीस रेट आदि) काम पर लगाया जाता है। यानी जिन्हें स्थायी प्रकृति के काम के लिए भरती दस्तावेज़ों में हेल्पर दिखाया जाता है। जबकि ठेका क़ानून अधिनियम, 1970 के तहत उन्हें सिर्फ़ स्थायी नौकरी के लाभ से वंचित करने के लिए अनुबन्ध श्रमिक (ठेका मज़दूर) नहीं माना जा सकता है। इसलिए संविदा-अस्थायी मज़दूरों के स्थायीकरण को प्राथमिक तौर पर लागू करवाने की सिफारिश कई बार कोर्ट के औपचारिक फैसले तक करते हैं। ऐसे में सुरक्षा मानकों व श्रम क़ानूनों का उल्लंघन करने वाली लाइफ लौंग समेत सभी कम्पनियों पर सख़्त कार्रवाई होनी चाहिए। लेकिन विडम्बना यह है कि कोर्ट के जारी आदेशों के बावजूद अभी तक उन्हें लागू नहीं किया जा रहा है। उल्टा ठेका प्रथा को ही बढ़ावा देते हुए नियमित प्रकृति पर अनियमित यानी ठेका श्रमिकों की भर्ती लाइफ लौंग समेत हर जगह की जा रही है। नये लेबर कोड के अनुसार तो मालिकों को मज़दूरों को निचोड़ने व जवाबदेही से छूट पर छूट दी जाने की पूरी तैयारी मोदी सरकार द्वारा की जा रही है। पहले के संघर्षों की बदौलत हासिल श्रम क़ानूनों को क़दम-ब-क़दम कमज़ोर व ख़त्म किया जा रहा है। इसके अलावा, कोई यूनियन न होने के चलते व रोज़गार असुरक्षा के चलते अस्थायी मज़दूरों के लिए खुलकर विरोध कर पाना मुश्किल होता है। समूचे सेक्टर के मज़दूरों की फ़ौलादी एकजुटता के बूते ही अपने अधिकारों के लिए लड़ पाना ठेका व अन्य अस्थायी मज़दूरों के लिए मुमकिन है।

जब ऐसी दुर्घटनाएँ होती हैं तो मौक़े पर पहुँचे तमाम मन्त्री व नेता इन मौतों पर घड़ियाली आँसू बहाते हैं। गुस्से को शान्त करने के लिए नेताशाही लीपापोती करने के लिए कुछ राहत, मुआवज़े, "सख़्त जाँच" के दिखावटी आदेशों की घोषणा कर मामले को ठण्डा करने की कोशिश करते हैं। पूँजीपतियों के इन नुमाइन्दों के लिए मज़दूरों की मौत महज़ एक संख्या है। सभी पार्टियों के बहुत से नेता-मन्त्री स्वयं कारख़ाना-मालिक हैं और किसी श्रम क़ानून को लागू नहीं करते, मज़दूरों को कोई सुरक्षा उपकरण नहीं देते हैं। सच्चाई यह है कि मज़दूरों की मौत के ज़िम्मेदार कोई और नहीं बल्कि फैक्टरी मालिक और उनके चन्दे से चलने वाली इन्हीं पूँजीवादी पार्टियों की सरकारें हैं। इन्हीं मालिकों, पूँजीपतियों के पैसे से तमाम चुनावबाज़ पार्टियाँ चुनाव लड़ती हैं। बदले में वे ही इस हत्या, लूट और शोषण को क़ानूनी ज़ामा पहनाते हैं।

लाइफ लौंग की दुर्घटना को महज़ लापरवाही कहना इस पर पर्दा डालने के समान है। वास्तव में यह मालिकों की मुनाफ़े की अन्धी हवस का नतीज़ा है। ये हादसे दर्शाते हैं कि मालिकों के लिए मज़दूरों की जान की कोई क़ीमत नहीं है, इसलिए कारख़ानों में सुरक्षा के इन्तज़ाम नहीं होते। आख़िर क्यों कारख़ाने मौत के कारख़ाने बन रहे हैं? आख़िर क्यों हरियाणा से लेकर देश भर में कारख़ानों समेत कार्यस्थलों में आग व भयानक दुर्घटनाएँ लगातार बढ़ रही हैं? इसे समझे बिना आगे की संघर्ष की दिशा और व्यापक मज़दूरों की सही लामबन्दी सम्भव नहीं है।

कार्य स्थलों पर दुर्घटनाओं के बढ़ने का बुनियादी कारण

कार्यस्थलों पर दुर्घटनाओं के बढ़ने का बुनियादी कारण मौजूदा पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था में आपसी प्रतियोगिता के चलते मुनाफ़े की घटती औसत दर का संकट है। इसके कारण हर मालिक अपनी लागत को कम-से-कम करने का प्रयास करता है, ताकि अपने मुनाफ़े की दर को बढ़ा सके। हर मालिक अपने मुनाफ़े को बरकरार रखने के लिए मज़दूरों से अधिक से अधिक काम करवाता है और मज़दूरों की ज़रूरतों को पूरा करने वाले ख़र्च कम कर देता है। यही कारण है कि मुनाफ़े का मार्जिन बढ़ाने के लिए सुरक्षा प्रबन्धों में कटौती की जाती है। समय पर जाँच व सर्विस नहीं होती, मशीनों से सेंसर हटा दिये जाते हैं। इसका ख़ामियाज़ा मज़दूर वर्ग को निर्मम व असुरक्षित परिस्थितियों में काम करके और अक्सर दर्दनाक तरीक़े से अपनी जान देकर चुकाना पड़ता है।

देश के किसी भी राज्य में कारख़ानों में सुरक्षा के कोई पुख़्ता इन्तज़ाम नहीं हैं। बड़े हादसों की ख़बरें मीडिया की सुर्ख़ियाँ एक-दो दिन बन जाती हैं। छोटे हादसे तो ख़बर भी नहीं बनते। इन हादसों की जाँच-पड़ताल होती ही नहीं या उसके बाद शायद ही कोई जाँच रिपोर्ट लोगों के सामने रखी गयी हो या दोषियों को सज़ा हुई हो!

तात्कालिक तौर पर क्या किया जाये? कहाँ से शुरुआत की जाये?

पहले हमको जानना होगा कि सुरक्षा के हमारे अधिकार क्या हैं? ऐसी दुर्घटनाओं पर रोकथाम तभी सम्भव होगी जब हम अपनी व्यापक वर्गीय एकजुटता के ज़रिये कारख़ानों के प्रबन्धन के साथ-साथ उन पर निगाह व नियन्त्रण रखने वाले विभागों पर दवाब बनायें। अगर हम चाहते हैं कि आगे ऐसी घटनाओं को दोहराया न जाये तो हमारे पास एकजुट होने के अलावा कोई रास्ता नहीं है। इस घटना में भी अभी तक मालिक पर कोई कारवाई नहीं हुई है।

धारूहेड़ा में **ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉन्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन** की ओर से मज़दूरों को साथ लेकर श्रम विभाग ज़िला रेवाड़ी को मुआवज़े, सुरक्षा व दोषियों पर कार्रवाई के लिए ज्ञापन भी दिया गया। इसके अलावा उपायुक्त रेवाड़ी, हरियाणा व केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय, मुख्यमन्त्री हरियाणा व प्रधानमन्त्री को शिकायत की जा चुकी है। यूनियन द्वारा रिहायशी बस्ती में जाकर कुछ मज़दूरों की एमएलसी करवाने में भी मदद की गयी।

इस घटना में सभी मज़दूरों को न्याय मिले इसके लिए लगातार प्रशासन व सरकार पर दबाव बनाये रखना होगा। ताकि भविष्य में भी कारख़ानों में जारी ठण्डी हत्याओं पर रोक लगाने के लिए तैयारी रहे। अगर अपने आपको सुरक्षित रखना है तो हमें स्थायी एकता बनानी होगी। यानी हमें सही और क्रान्तिकारी यूनियन से जुड़ना होगा और यूनियन का सदस्य बनना होगा। ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन ऐसी ही एक यूनियन है। मज़दूरों को इसकी सदस्यता लेनी चाहिए और इसके ज़रिये समूचे औद्योगिक सेक्टर के मज़दूरों की एकजुटता स्थापित करनी चाहिए। वरना सिर्फ़ गुस्सा होने, रोने-धोने से निराशा ही हाथ लगेगी। आज यूनियन के तहत व्यापक जुझारू एकजुटता के ज़रिये ही हम इस अन्याय, शोषण, लूट व उत्पीड़न पर लगाम लगा सकते हैं। हमें अपनी प्रमुख माँगों को व्यापक मज़दूर आबादी के बीच ले जाना होगा, उन्हें जागरूक, लामबन्द और संगठित करके प्रबन्धन, प्रशासन व सरकार पर लगातार दवाब बनाने के सिवाये कोई दूसरा रास्ता नहीं है। ये माँगें इस प्रकार हैं :

1. हर कम्पनी सभी कारख़ानों में मानकों के अनुरूप सुरक्षा के पुख़्ता इन्तज़ाम सुनिश्चित करे।

2. सभी कार्यस्थलों पर सुरक्षा क़ानूनों समेत सभी श्रम क़ानूनों को तत्काल सख़्ती ले लागू किया जाये।

3. दोषी मालिक/प्रबन्धन व ठेकेदारों के अलावा ज़िम्मेदार लेबर इंस्पेक्टर व श्रम विभाग पर तत्काल सख़्त से सख़्त कार्रवाई की जाये।

4. मृतक मज़दूर के परिवार को 50 लाख व घायल मज़दूरों के परिवार को 20 लाख रुपये मुआवज़ा दिया जाये।

5. सरकार की तरफ़ से तत्काल राहत राशि पीड़ितों व उनके परिवार के सदस्यों को दी जाये।

6. कम्पनी में ठेका प्रथा उन्मूलन एवं विनियमन एक्ट (1970-1971) के उल्लंघन पर सख़्ती से रोक लगायी जाये और इसका उल्लंघन करने वाली कम्पनी पर सख़्त कार्रवाई की जाये।

आँगनवाड़ी कर्मियों ने लोकसभा चुनाव में मज़दूरों-मेहनतकशों के स्वतन्त्र पक्ष को मज़बूत करने का निर्णय लिया!!

(लोकसभा चुनाव के मद्देनज़र दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन (DSAWHU) द्वारा जारी पर्चा)

बहनो, साथियो,

आने वाली 25 मई को दिल्ली में लोकसभा के चुनाव हैं। यह चुनाव एक ऐसे वक़्त में हो रहा है जब हमारे देश की 80 फ़ीसदी आबादी जो मेहनत-मज़दूरी करके अपनी जीविका चलाती है वह बेरोज़गारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, महँगी शिक्षा और साम्प्रदायिकता से त्रस्त है। तमाम चुनावबाज़ पार्टियों के शासन ने यह दिखला दिया है कि वो हमारे हितों की नुमाइंदगी कतई नहीं कर सकतीं!

मोदी सरकार के पिछले 10 साल देश मेहनतकश अवाम के लिए नर्क़ साबित हुए हैं। भाजपा और मोदी सरकार की अमीरपरस्त नीतियों की वजह से जनता के ऊपर बेरोज़गारी, महँगाई, भ्रष्टाचार और साम्प्रदायिकता का ऐसा कहर टूटा है, जिसकी मिसाल हमारे देश के इतिहास में मौजूद नहीं है। नोटबन्दी, जीएसटी, कोरोना महामारी के दौरान का कुप्रबन्धन, राफ़ेल घोटाला, अडानी घोटाला, इलेक्टोरल बॉण्ड महाघोटाला, ईवीएम घोटाला, आसमान छूती महँगाई और बेरोज़गारी दर, साम्प्रदायिकता का ज़हर, मज़दूर विरोधी लेबर कोड, जन आन्दोलनों का बर्बर दमन : यही नेमतें हैं 10 साल के मोदी राज की! आज अमीरों और धन्नासेठों की सबसे चहेती पार्टी भाजपा यूँ ही नहीं है और हजारों करोड़ रुपए का चन्दा इन धन्नासेठों ने मोदी को समाजसेवा के लिए तो दिया नहीं है। ज़ाहिरा तौर पर इसका मतलब ही यह है कि भाजपा इस दौर में पूँजीपति वर्ग की सबसे कारगर तरीक़े से सेवा कर सकती है और पूँजीपरस्त नीतियों को डण्डे के ज़ोर पर लागू करवा सकती है। यह एक फ़ासीवादी पार्टी है और इसलिए जनता की सबसे बड़ी दुश्मन है।

अपने संघर्षों के दौरान तमाम पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों की असलियत से आँगनवाड़ी महिलाकर्मी पहले से ही परिचित हैं। लेकिन आज पूरे देश के स्तर पर बात करें तो भाजपा आम मेहनतकश जनता यानी कि मज़दूरों, आँगनवाड़ी कर्मियों, ग़रीब किसानों, निम्न व आम मध्यमवर्गीय लोगों, आम स्त्रियों, दलितों, आदिवासियों व मुसलमानों की सबसे बड़ी और सबसे ख़तरनाक दुश्मन है। चुनाव से पाँच दिन पहले अपना लम्बा-चौड़ा घोषणापत्र लेकर आयी भाजपा ने कहीं हमारी माँगों पर कोई शब्द ख़र्च नहीं किया। हालाँकि, अगर किया भी होता तो वह जुमला ही साबित होता क्योंकि इनके तमाम चुनावी वायदों की सच्चाई पिछले दस सालों में हमसे छुपी हुई नहीं है। 2022 की हमारी ऐतिहासिक हड़ताल पर 'एस्मा' जैसे दमनकारी क़ानून का इस्तेमाल करने वाली यह भाजपा सरकार ही थी और 3 मार्च 2024 को जन्तर-मन्तर पर हमारे शान्तिपूर्ण सभा को पुलिस के बल पर इसी सरकार ने नहीं होने दिया। "स्त्री-सशक्तिकरण" की बात करने वाले और खुद को "स्त्रियों की गरिमा के रक्षक" बताने वाले ये लोग असल मायने में सबसे कुत्सित-घृणित दर्जे के स्त्री-विरोधी हैं। भाजपा के सत्ता में आने के बाद केन्द्र सरकार द्वारा आँगनवाड़ी कर्मियों के मानदेय में कोई बढ़ोत्तरी नहीं की गयी है। 2015 में प्रधानमन्त्री द्वारा 1500 रुपये और 750 रुपये की घोषणा भी जुमला निकला। वहीं "बेटी बचाओ और बेटी पढ़ाओ" के नाम पर 446.82 करोड़ रुपये में से 80% केवल विज्ञापन में बहा दिये गये। इस बार भी चुनाव में आँगनवाड़ी कर्मियों के सामने "आयुष्मान भारत स्कीम" का जुमला उछालकर यह सोच रहे हैं कि हम इनके झाँसे में आ जायेंगे !!

इस चुनावी सरगर्मी में मोदी के नक़्शेक़दम पर चलते हुए केजरीवाल सरकार ने भी दिल्ली की महिलाओं को 1000 रुपये प्रतिमाह देने का जुमला उछाला है। यह वही 'आप' सरकार है जिसने हमें, दिल्ली की 22,000 आँगनवाड़ी कर्मियों को 2022 में अपना मेहनताना और न्यूनतम वेतन की माँग करने की 'एवज़' में हाथ में टर्मिनशन लेटर थमा दिये थे। यूँ तो दिल्ली में हर दूसरे मसले पर उप-राज्यपाल द्वारा हस्तक्षेप की ख़बर आ जाती है, लेकिन आँगनवाड़ी कर्मियों के गैर-क़ानूनी टर्मिनेशन पर उप-राज्यपाल की आँखों पर पट्टी बँध गयी। वरना तो अपने सियासी फ़ायदों के लिए आपस में "तू-तू-मैं-मैं" करने में भाजपा, 'आप' और कांग्रेस हमेशा तैयार रहते हैं, लेकिन जहाँ मज़दूरों-मेहनतकशों के दमन की बात आती है इनका याराना देखते ही बनता है। इस कुकृत्य में कांग्रेस भी उतनी ही भागीदार है। दिल्ली उच्च न्यायालय में चल रहे हमारे केस में 'आप' की वकालत करने वाले कोई और नहीं बल्कि कांग्रेस के वरिष्ठ नेता अभिषेक मनु सिंघवी हैं। 1975 में समेकित बाल विकास परियोजना की शुरुआत भी कांग्रेस सरकार ने की थी, और स्त्रियों को अवसर देने के नाम पर उनके श्रम शक्ति की लूट पर इस योजना का आधार खड़ा किया। इस लोकसभा चुनाव में भी कांग्रेस ने स्कीमवर्करों को लुभाने के लिए उनके मानदेय में केन्द्र सरकार के हिस्से को दोगुना करने का वायदा किया है। लेकिन मानदेय में केन्द्र सरकार का हिस्सा ही इतना कम है कि महँगाई के मद्देनज़र उसके दुगुना हो जाने पर भी हमें कोई राहत नहीं मिलने वाली। दूसरा वायदा उसने आँगनवाड़ी कर्मियों की संख्या को दुगुना करने का किया है; मतलब मेहनत की लूट की इस परियोजना में और स्त्रियों को शामिल कर उनके शोषण किया जायेगा। देश के स्तर पर में अलग-अलग समय में तमाम पार्टियों ने स्कीम वर्करों के संघर्षों का दमन किया है।

जैसा कि आप सभी को पता है, लोकसभा चुनाव के मद्देनज़र दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन (DSAWHU) ने केन्द्र सरकार और राज्य सरकार समेत सभी पार्टियों के नाम एक माँगपत्रक तैयार किया था और 3 मार्च को दिल्ली के जन्तर-मन्तर पर बड़े कार्यक्रम का आयोजन भी किया था। हालाँकि आँगनवाड़ी कर्मियों समेत अन्य मज़दूरों-मेहनतकशों के जुझारू तेवर से बौखलाई हुई मोदी सरकार ने दिल्ली पुलिस के ज़रिये इस महाजुटान पर दमनात्मक कार्रवाई करवायी थी जिसका डटकर बहादुराना तरीक़े से मुक़ाबला किया गया था। यह माँगपत्रक इस चुनाव में दिल्ली की 22 हज़ार आँगनवाड़ीकर्मियों का एजेण्डा है। कर्मचारी के दर्जे की माँग, मानदेय में बढ़ोत्तरी, बरख़ास्त आँगनवाड़ी कर्मियों की तत्काल बहाली, पेंशन, रिटायरमेण्ट सुविधाएँ, ईएसआई-पीएफ़, समेत अन्य कई माँगें इसमें शामिल हैं।

हमारे माँगपत्रक पर किसी भी चुनावबाज़ दल ने यानी भाजपा से लेकर कांग्रेस या आप तक किसी भी पार्टी ने कोई ठोस बात नहीं कही है। हड़ताल के दौरान बरख़ास्त की गयी आँगनवाड़ी कर्मियों के मसले पर तो यह तीनों ही दल इतने बेशर्म तरीक़े से नंगे हुए हैं कि अब दिल्ली में आँगनवाड़ीकर्मियों के बीच इनकी दाल नहीं गलने वाली है।

इसके अलावा जिस एक पार्टी ने आँगनवाड़ी की महिलाओं की सभी माँगों को अपने घोषणापत्र में शामिल किया है वह है - भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI)। RWPI ने पहले भी महिलाकर्मियों की सभी माँगों का न सिर्फ़ पुरज़ोर समर्थन किया है बल्कि उनके संघर्षों, आन्दोलनों व हड़तालों में प्रत्यक्ष भागीदारी भी की है। 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' (RWPI) सभी मेहनतकशों की पार्टी है जो किसी और के श्रम का शोषण नहीं करते, अपनी मेहनत के बूते अपनी रोज़ी-रोटी कमाते हैं, कल-कारख़ानों में, खेतों में, खानों-खदानों में, सरकारी और निजी कार्यालयों में काम करते हैं, शहरों-गाँवों में अनौपचारिक कामगार के रूप में मेहनत करते हैं। RWPI मज़दूरों-मेहनतकशों के चन्दे के दम पर चलने वाली पार्टी है इसलिए ही यह सही मायने में उनके हक़ों-अधिकारों के लिए लड़ सकती है।

RWPI के उम्मीदवार दिल्ली में दो सीटों समेत पूरे देश में छह सीटों से चुनाव लड़ रहे हैं। उत्तर-पूर्वी दिल्ली से योगेश स्वामी उम्मीदवार हैं तो वहीं उत्तर-पश्चिमी दिल्ली से अदिति चुनाव में मज़दूरों व आँगनवाड़ीकर्मियों का प्रतिनिधित्व कर रही हैं और असल मायने में यही स्कीम वर्कर्स की माँगों को उठा सकते हैं क्योंकि यह पार्टी अपने समस्त संसाधनों, नीति-निर्माण और गतिविधियों के लिए मेहनतकश वर्गों पर निर्भर करती है और ठीक इसीलिए मेहनतकश वर्गों के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष को मज़बूती से उठा सकती है। कांग्रेस से लेकर आप, भाजपा जैसी तमाम पार्टियाँ मालिकों-धन्नासेठों की पार्टियाँ हैं। जब मज़दूरों और मालिकों के हित एक नहीं हो सकते तो मालिकों की पार्टी या पार्टियाँ मज़दूरों के हितों की नुमाइन्दगी कैसे कर सकती हैं? मज़दूरों व आँगनवाड़ी कर्मियों के हितों की नुमाइन्दगी उनकी अपनी क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी ही कर सकती है जो उन्हीं के दम पर खड़ी हो और उनके ही फ़ण्ड से चलती हो।

आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों ने इस बार के लोकसभा चुनाव में न सिर्फ़ भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के उम्मीदवार को समर्थन देने फ़ैसला लिया है बल्कि भाजपा जैसी आँगनवाड़ी कर्मियों, महिलाओं, मज़दूरों की दुश्मन नम्बर 1 पार्टी की वोटबन्दी का भी फ़ैसला लिया है।

हमारा माँगपत्रक :-

1. सभी आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं व सहायिकाओं को सरकारी कर्मचारी का दर्जा दिया जाये, हमें नियमित किया जाये व श्रम क़ानूनों के अन्तर्गत लाया जाये ताकि हमें रोज़गार की पक्की गारण्टी मिले।

2. हमारी ज़िम्मेदारी और महँगाई को ध्यान में रखते हुए सरकार हमारे मानदेय में तत्काल प्रभाव से बढ़ोत्तरी कर कार्यकर्ता एवं सहायिका को क्रमशः 30,000 रुपये व 25,000 रुपये के हिसाब से मानदेय का भुगतान करे।

3. केन्द्र व राज्य सरकार यह सुनिश्चित करे कि केन्द्र सरकार द्वारा घोषित व 1 अक्तूबर 2018 से लागू मानदेय वृद्धि की बकाया राशि (जनवरी 2024 तक 63 महीनों के लिए कार्यकर्ता व सहायिका को क्रमशः 94,500 रुपये व 47,250 रुपये) का तुरन्त भुगतान किया जाये।

4. दिल्ली में 2022 की हड़ताल के उपरान्त गैर-क़ानूनी रूप से टर्मिनेट की गयी सभी 884 महिलकर्मियों को बिना शर्त काम पर वापस रखा जाये और टर्मिनेशन की इस अवधि के दौरान के मानदेय का पूरा भुगतान किया जाये।

5. महँगाई पर रोक लगाने के लिए सभी अप्रत्यक्ष करों को समाप्त किया जाये और बढ़ती सम्पत्ति के आधार पर प्रगतिशील प्रत्यक्ष करों की व्यवस्था को मज़बूती के साथ लागू किया जाये।

6. 'भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून' पारित हो। हर काम करने योग्य व्यक्ति को साल के 365 दिन पक्का काम दिया जाये। काम न दे पाने की सूरत में हर महीने 15,000 रुपये बेरोज़गारी दिया जाये।

7. सभी श्रम क़ानूनों को सख़्ती से लागू किया जाये, प्रस्तावित चार 'लेबर कोड' रद्द किये जायें। ग्रामीण मज़दूरों को भी श्रम क़ानूनों के अन्तर्गत लाया जाये। 'पुरानी पेंशन स्कीम' बहाल किया जाये। ठेकेदारी प्रथा ख़त्म कर नियमित प्रकृति के कामों पर पक्के रोज़गार का प्रबन्ध किया जाये।

(पेज 2 पर जारी)

अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट ने की देश में बेरोज़गारी की भयावह स्थिति की पुष्टि

मोदी सरकार के मुख्य आर्थिक सलाहकार का बेशर्म ऐलान : बेरोज़गारी जैसी समस्याओं को हल करने की उम्मीद सरकार से न करें!

● आनन्द

हमारे देश में बच्चों को यह घुट्टी की तरह पिलाया जाता है कि 'पढ़ोगे-लिखोगे तो बनोगे नवाब'! लेकिन बड़े होने के बाद यह सच्चाई हम सभी जानते हैं कि पढ़ने-लिखने के बाद भी ज़्यादातर युवाओं को एक अदद नौकरी के लिए कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं। दर-दर की ठोकरें खाकर भी पढ़े-लिखे ज़्यादातर लोगों को नौकरी नहीं मिलती और वे छोटे-मोटे काम-धन्धे करके या ठेला-रेहड़ी-खोमचा लगाकर किसी तरह से अपनी ज़िन्दगी काटते हैं। सरकार इस सच्चाई पर भले ही कितने ही पर्दे डाले, लेकिन गाहे-बगाहे इस नंगी सच्चाई को उजागर करने वाले आँकड़े सामने आ ही जाते हैं। ऐसे ही कुछ आँकड़े हाल ही में **अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन** और **इंस्टीट्यूट ऑफ़ ह्यूमन डेवलपमेण्ट** द्वारा संयुक्त रूप से जारी **'भारत रोज़गार रिपोर्ट 2024'** में मौजूद हैं। यह रिपोर्ट बताती है कि देश में हर 100 बेरोज़गारों में 83 युवा हैं। यही नहीं, कुल बेरोज़गारों में पढ़े-लिखे युवाओं की संख्या साल 2000 के मुक़ाबले 2022 तक लगभग दोगुनी हो गयी। देश के कुल बेरोज़गारों में शिक्षित बेरोज़गारों का अनुपात जोकि वर्ष 2000 में 35.2 फ़ीसदी था वह 2022 में बढ़कर 65.7 फ़ीसदी हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि विश्वविद्यालयों में मिलने वाली डिग्रियों का मोल काग़ज़ के टुकड़ों से ज़्यादा नहीं होता जा रहा है क्योंकि ज़्यादा से ज़्यादा लोगों के लिए उनका कोई मतलब नहीं रह गया है।

किसी दी गयी आबादी में कुल कितने प्रतिशत लोगों को या तो रोज़गार मिला है या जो रोज़गार की तलाश कर रहे हैं, यह श्रम शक्ति भागीदारी दर (लेबर फ़ोर्स पार्टिसिपेशन रेट) से ज़ाहिर होता है। वर्ष 2000 में यह दर 61.6 प्रतिशत थी जबकि 2018 तक आते-आते यह गिरकर 50.2 प्रतिशत रह गयी। इसका अर्थ है कि लोग बेरोज़गारी से तंग आकर रोज़गार की तलाश करना ही छोड़ रहे हैं। महिलाओं के मामले में यह गिरावट और भी ज़्यादा है जिससे यह साफ़ है कि महिलाएँ बहुत बड़ी संख्या में रोज़गार खोजना बन्द कर रही हैं। भारत दुनिया में सबसे कम महिला श्रम शक्ति भागीदारी दर वाले देशों में शामिल है जो हमारे समाज में महिलाओं की स्थिति का एक आइना तो है ही, लेकिन इसके साथ ही साथ यह अर्थव्यवस्था की लचर हालत की भी एक बानगी है।

रिपोर्ट में यह सच्चाई भी उजागर हुई है कि जिन लोगों को रोज़गार मिल भी रहा है उनमें पक्का रोज़गार पाने वाले लोगों की संख्या बमुश्किल 10 फ़ीसदी है। यानी 90 फ़ीसदी से ज़्यादा लोगों को अनौपचारिक क़िस्म का काम मिल रहा है, भले ही वे नियमित प्रकृति के काम कर रहे हों। जिन लोगों की गिनती रोज़गार प्राप्त लोगों में होती है उनमें से करीब दो-तिहाई स्व-रोज़गार की श्रेणी में आते हैं जो रोज़गार के नाम पर धोखा है। ऐसे स्व-रोज़गार प्राप्त लोगों का ही उदाहरण देते हुए हमारे प्रधानमन्त्री महोदय ने अपना 56 इंच का सीना फुलाते हुए पकौड़ा बेचने को भी रोज़गार बताया था। रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि हाल के वर्षों में स्विगी और ज़ोमैटो जैसे प्लेटफ़ॉर्मों पर डिलीवरी का काम करने वाले गिग वर्करों की संख्या में इज़ाफ़ा हुआ है लेकिन उनके काम की ख़ून चूस लेने वाली और पीठ तोड़ देने वाली परिस्थितियों व सेवा शर्तों से हम सभी वाक़िफ़ हैं। इसके अलावा रिपोर्ट में इस तथ्य की भी पुष्टि हुई है कि कोविड लॉकडाउन की वजह से कृषि से उद्योग अथवा गाँवों से शहरों की ओर होने वाले पलायन में कमी आयी और इस दौर में जिन लोगों ने पलायन किया उन्हें उद्योग में नहीं बल्कि निर्माण व सेवाक्षेत्रों में ही रोज़गार मिला।

रिपोर्ट में यह भी ज़िक्र किया गया है कि रोज़गार में कमी आने का एक कारण लोगों में कौशल और ख़ासकर कम्प्यूटर सम्बन्धी कौशल की कमी होना है। यह बताया गया है कि भारत मे 90 फ़ीसदी लोगों को एक्सेल शीट में फ़ॉर्मूला लगाने नहीं आता और 60 प्रतिशत लोगों को फ़ाइलों को कॉपी-पेस्ट तक करना नहीं आता तथा 75 प्रतिशत लोग ईमेल के साथ अटैचमेंट नहीं भेज सकते। परन्तु रिपोर्ट में यह सच्चाई नहीं बतायी गयी है कि शिक्षा में गुणवत्ता की कमी के लिए भी लोग नहीं बल्कि सरकार ही ज़िम्मेदार है क्योंकि वह शिक्षा के क्षेत्र से धीरे-धीरे अपने हाथ खींचती गयी है। मोदी सरकार के दस सालों के दौरान यह प्रक्रिया बहुत तेज़ी से बढ़ी है।

अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट जारी करते हुए मोदी सरकार के मुख्य आर्थिक सलाहकार वी. अनन्था नागेश्वरन ने निहायत ही बेशर्मी से कहा कि सरकार बेरोज़गारी जैसी आर्थिक, सामाजिक समस्याओं के मामले में कुछ भी नहीं कर सकती है। सलाहकार महोदय शायद यह भूल गए कि वे जनता के पैसे के बदले जिस सरकार को सलाह देते हैं वह इस देश के लोगों से हर साल दो करोड़ नये रोज़गार पैदा करने का वायदा करते हुए सत्ता में आयी थी। लेकिन चलिए इसी बहाने उन्होंने इस सरकार की इस असलियत से पर्दा तो उठा दिया कि वास्तव में वह इस देश की जनता की समस्याएँ हल करने के लिए है ही नहीं। अच्छा होता कि उससे आगे की भी सच्चाई उनके मुँह से निकल जाती कि वास्तव में पूँजीवादी सरकार तो पूँजीपतियों की समस्याओं को दूर करने के लिए बनी है। जनता की बेरोज़गारी व बदहाली की तस्वीर तो तब पूरी होती जब उन्होंने इस आँकड़े को भी जारी किया होता कि पिछले 10 सालों में मोदी सरकार ने कितने लाख करोड़ रुपए का तोहफ़ा पूँजीपतियों को बजट रियायतों व कर्ज़माफ़ी के रूप में दिया और कितने अरब रुपये के ठेके और जनता की सम्पदा पूँजीपतियों को सौंपी।

मुख्य आर्थिक सलाहकार महोदय देश की जनता को यह भी सन्देश देना चाह रहे थे कि वे सरकार से बेरोज़गारी ही नहीं बल्कि अशिक्षा, बेघरी, भुखमरी, असमानता, बीमारी आदि जैसी किसी भी समस्या का समाधान करने की उम्मीदें न पालें। अगर उन्होंने थोड़ी और ईमानदारी का परिचय दिया होता तो उनके मुँह से यह भी निकल जाता कि ये समस्याएँ पूँजीवादी आर्थिक नीतियों की अवश्वम्भावी परिणति हैं जिनकी शुरुआत कांग्रेस के शासन में ही हुई थी लेकिन जिन्हें फ़ासीवादी मोदी सरकार ने बिल्कुल नंगे, तानाशाहाना और विनाशकारी तरीक़े से लागू किया है। नोटबन्दी से अर्थव्यवस्था की कमर तोड़ने और जीएसटी लगाकर जनता पर महँगाई का बोझ लादने एवं कोविड महामारी के दौरान बिना किसी योजना के सनक भरा लॉकडाउन थोपकर जनता की बर्बादी को नयी ऊँचाईयों तक पहुँचाने के बाद अब मोदी सरकार चुनावों से ठीक पहले अपने सलाहकार के ज़रिये अपनी सारी ज़िम्मेदारियों से बेशर्मी से पल्ला झाड़ रही है। वैसे तो जब तक पूँजीवाद रहेगा तब तक बेरोज़गारी जैसे समस्याओं से पूरी तरह निजात नहीं मिलने वाली है, लेकिन आज का तात्कालिक कार्यभार यह है कि फ़ासीवादी मोदी सरकार के जनविरोधी और पूँजीपरस्त चरित्र को बेनकाब किया जाये और बेरोज़गारी महँगाई शिक्षा स्वास्थ्य आवास जैसे मुद्दों पर जनआन्दोलन छेड़ा जाये और आगामी चुनावों के बाद जो भी पार्टी सत्ता में आए उसे इन मुद्दों को लेकर घेरा जाये।

सशस्त्र बलों की नर्सरी 'सैनिक स्कूलों' के संचालन में भाजपा-आरएसएस से जुड़े लोगों की बढ़ती घुसपैठ के ख़तरनाक मायने!

● इन्द्रजीत

भाजपा के 10 साल के शासनकाल में विभिन्न सरकारी संस्थाओं और एजेंसियों का फ़ासीवादीकरण धड़ल्ले से जारी है। अब इस कड़ी में एक और घटनाक्रम जुड़ गया है। यह कोई चौंकाने वाली खबर नहीं है कि नये खुले सैनिक स्कूलों में से 62 प्रतिशत के ठेके संघ परिवार से जुड़े लोगों के पास पहुँच गये हैं। 'रिपोर्टर्स कलेक्टिव' के द्वारा इस मामले का खुलासा किया गया है। शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ता साम्प्रदायीकरण और निजीकरण अब उस स्थिति तक पहुँच रहा है जो न केवल शिक्षा को प्रभावित करेगा बल्कि सशस्त्र बलों, नौकरशाही और समाज के पूरे ताने-बाने में साम्प्रदायिक कट्टरपन्थी नफ़रती सोच को भी बढ़ावा देगा। शिक्षा के इस कदर साम्प्रदायीकरण और निजीकरण के परिणाम भयंकर होने वाले हैं। गोदी मीडिया की ज़हरीली ख़ुराक पाकर चेतन चौधरी नामक आरपीएफ जवान द्वारा चार लोगों की लक्षित हत्या हम भूले नहीं होंगे। संघियों की सैनिक स्कूल फैक्टरियों में कितने चेतन चौधरी पैदा हो सकते हैं इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

मोदी सरकार द्वारा अक्टूबर, 2021 में सैनिक स्कूलों में निजी निवेश को छूट देने की नीति बनायी गयी थी। इसके अनुसार पीपीपी मॉडल के तहत 100 नये सैनिक स्कूल खोले जाने थे जिनका संचालन निजी तौर पर किया जाना तय हुआ था। इन सैनिक स्कूलों में पढ़ने वाले छात्रों की फ़ीस से लेकर ढाँचे में सरकार द्वारा आर्थिक सहायता दिया जाना भी सुनिश्चित था। मोदी सरकार द्वारा 'एसएसएस' (सैनिक स्कूल समिति) के माध्यम से 5 मई 2022 से 27 दिसम्बर 2023 के बीच 40 नये सैनिक स्कूल खोलने का समझौता निजी निवेशकों से किया गया। इनमें से 62 फ़ीसदी सैनिक स्कूल चलाने का समझौता भाजपा नेताओं, संघ परिवार और उससे जुड़े लोगों के साथ हुआ है। **इनमें साध्वी ऋतम्भरा से लेकर महन्त बालक नाथ जैसे संघी शामिल हैं जो अपने ज़हरीले व नफ़रती भाषणों-बयानों के लिए कुख्यात हैं। इससे पहले देश में 33 सैनिक स्कूल थे जिनको सैनिक स्कूल समिति चला रही थी। सैनिक स्कूल समिति रक्षा मन्त्रालय के अधीन एक स्वायत्त संगठन है। यह संस्था और तमाम संस्थाएँ अब कितनी स्वायत्त रह गयी हैं इसकी असलियत हम सभी जानते हैं।**

नयी शिक्षा नीति - 2020 के ज़रिये भाजपा शिक्षा के निजीकरण व साम्प्रदायीकरण को नये मुक़ाम तक लेकर गयी है। अब सैनिक स्कूलों को नफ़रती हाथों में सौंपकर वह इस एजेण्डे को और भी ख़तरनाक ढंग से आगे बढ़ा रही है। इस समझौते के बाद कई पुराने स्कूलों को भी सैनिक स्कूलों में बदल दिया गया है जिसमें समविद गुरुकुलम गर्ल्स सैनिक स्कूल भी शामिल है। इस स्कूल को साध्वी ऋतम्भरा चलाती है जिसका नाम बाबरी मस्जिद विध्वंस से जुड़ा हुआ है। भोंसले मिलिट्री स्कूल, नागपुर भी इन नये 40 सैनिक स्कूलों में शामिल है, कथित तौर पर जिसके तार नान्देड और मालेगाँव बम ब्लास्ट केस से जुड़े हुए थे। संघ परिवार की मंशा अब सैनिक स्कूलों के ज़रिये सशस्त्र बलों में अपनी घुसपैठ को और बढ़ाने की है। सैनिक स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे बड़ी संख्या में सशस्त्र बलों में शामिल होते हैं और कुछ तो सीधे ऑफिसर रैंक पर भर्ती होते हैं। पिछले 6 सालों में इन स्कूलों में पढ़ने वाले छात्रों में से 11 फ़ीसदी सशस्त्र बलों में गये हैं।

शिक्षा के निजीकरण और साम्प्रदायीकरण के ख़िलाफ़ एकजुट होकर आवाज़ उठायी जानी चाहिए। सैनिक स्कूलों को भाजपा-आरएसएस के लोगों के हाथों में दिया जाना बेहद ख़तरनाक है। हम किसी भी तरह की धार्मिक शिक्षा में सरकारी अनुदान और शिक्षा में धार्मिक संस्थाओं की घुसपैठ को बन्द किया जाना चाहिए। ऐसी संस्थाओं की गतिविधियों को सख़्त निगरानी में रखा जाना चाहिए तथा सरकारी शिक्षा बोर्डों से इनकी मान्यता रद्द होनी चाहिए। शिक्षा व्यवस्था को किसी भी धर्म से जुड़ी संस्थाओं और धार्मिक लोगों के चंगुल से छुड़ाया जाना चाहिए और पूरे देश में एक समान स्कूली व्यवस्था लागू होनी चाहिए। धार्मिक गुरुओं, सन्तों, मौलानाओं, पादरियों और ग्रन्थियों का शिक्षा के क्षेत्र में कोई काम नहीं है। धर्म लोगों का निजी मसला है सार्वजनिक जीवन में इसकी दखल नहीं होनी चाहिए। सरकार और सरकारी संस्थाओं का धर्म और इससे जुड़े मामलों से पूर्ण विलगाव होना चाहिए। यही सच्ची धर्मनिरपेक्षता है। लेकिन भारत की तथाकथित धर्मनिरपेक्षता के सर्वधर्मसमभाव के बोदे सिद्धान्त का यही परिणाम हो सकता था जिसे हम आज भुगत रहे हैं। सैनिक स्कूलों के संघियों द्वारा संचालन की स्थिति के भविष्य की भयंकरता को हमें समझना चाहिए। जागरूक और प्रगतिशील छात्रों-युवाओं और मेहनतकश जनता को आगे बढ़कर सरकार की ऐसी नीतियों का जनता के बीच भण्डाफोड़ करना चाहिए और संघी फ़ासीवादियों के कुत्सित इरादों को नाकाम करना चाहिए।

क्या ईवीएम सचमुच अभेद्य है?

● अनन्त

देश में 18वें लोकसभा चुनाव की घोषणा हो चुकी है। देशभर में आम चुनाव 19 अप्रैल से लेकर 1 जून तक चलेंगे। तत्पश्चात 4 जून को चुनाव परिणाम की घोषणा की जायेगी। यह चुनाव भी इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन यानी ईवीएम तथा वोटर वेरीफाईएबल वेरीफिएबल पेपर ऑडिट ट्रायल यानी वीवीपैट की सहायता से करवाया जायेगा। किन्तु ग़ौरतलब है कि ईवीएम तथा वीवीपैट के इस्तेमाल पर विपक्षी दलों से लेकर बुद्धिजीवियों, अन्य प्रगतिशील संगठनों, तथा जनता के एक हिस्से में कई सवाल है जिन्हें चुनाव आयोग से लेकर उच्चतम न्यायालय तक में बार-बार उठाने के बावजूद इस पर केन्द्रीय चुनाव आयोग तथा उच्चतम न्यायालय दोनों ही कोई तर्कसंगत जवाब नहीं दे पा रहा है।

सुप्रीम कोर्ट में पिछले लम्बे समय से ढेरों याचिकाएँ इस बाबत दायर की गयी हैं, उन पर जाँच करने के बजाय सुप्रीम कोर्ट ने हाल ही में दायर ऐसी एक याचिका को यह कहते हुए ख़ारिज कर दिया कि अब वह इस प्रकार की कोई भी याचिका नहीं सुन सकता! क्योंकि ऐसी ढेरों याचिकाएँ दायर होती हैं!! और इसके साथ ही उपदेशात्मक दलील पेश की कि हर चुनाव पद्धति में कुछ सकारात्मक या नकारात्मक होता ही है! चुनाव जैसे एक बेहद ही गम्भीर मसले पर, जिसमें भागीदारी करने वाले उम्मीदवार से लेकर मतदाता तक में, अधिकांश लोगों का उस प्रक्रिया पर सवाल हो, तब ऐसी स्थिति में इस प्रकार का तर्क स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनाव को आश्वस्त नहीं कर सकता है। यह पूरा तर्क भी कुतर्क ज़्यादा है, और तर्क कम। और मज़ाकिया होने की हद तक कुतर्क है।

ज़ाहिरा तौर पर ईवीएम पर उठ रहे सवाल विपक्षी दलों का कोई चुनावी हथकण्डा मात्र नहीं है, बल्कि इसकी ठोस ज़मीन है। अलग-अलग समय पर विशेषज्ञों से लेकर आम राजनीतिक कार्यकर्ताओं द्वारा लगातार ये सवाल उठाये जाते रहे हैं। ईवीएम सवालों के घेरे में अपने शुरुआती दौर से ही है। देश में ईवीएम का पहले प्रयोग का इतिहास भी दिलचस्प है। सबसे पहली बार ईवीएम का इस्तेमाल केरल के परवूर में किया गया था, जहाँ सीपीआई के सिवान पिल्लई ने काँग्रेस के ए.सी. जोस को 123 मतों से हरा दिया था। इस परिणाम को काँग्रेस उम्मीदवार ने केरल उच्च न्यायालय और फिर सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी। उनका तर्क था कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 तथा निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961 चुनाव आयोग को ईवीएम के प्रयोग का अधिकार नहीं देता है। उच्चतम न्यायालय ने इस तथ्य का संज्ञान लेते हुए कि, चुनाव आयोग चुनाव कराने की "एक नयी विधि का आविष्कार" नहीं कर सकता, पारम्परिक तरीक़े से मतपत्रों का उपयोग करके पुनर्मतदान का आदेश दिया। मतपत्रों से हुए मतदान के फलस्वरूप चुनाव परिणाम बदल गए। बहरहाल, दिसम्बर 1988 में, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में तबदीली कर चुनाव आयोग को ईवीएम इस्तेमाल करने का अधिकार दिया गया। 1989 में नौवें आम चुनाव के समय राजीव गाँधी सरकार 150 सीटों पर ईवीएम का प्रयोग करना चाहती थी। किन्तु, विपक्षी नेताओं के दबाव में, जिन्होंने यह दिखाया कि ईवीएम दोषपूर्ण परिणाम दे सकता है, ईवीएम का इस्तेमाल नहीं किया गया। 1998 तथा 2001 के बीच कुछ-कुछ जगहों पर इसका प्रयोग किया गया और फिर 2004 के आम चुनाव में हर जगह इसका इस्तेमाल किया गया। उसके बाद सवालों के घेरों में होने के बावजूद इसका इस्तेमाल किया जा रहा है।

ग़ौरतलब है कि जिस समय भारत में ईवीएम के प्रयोग को स्थापित किया जा रहा था, अन्य देश जहाँ इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग होती थी, जिनमें इंग्लैण्ड, फ्रांस, नीदरलैण्ड और अमेरिका आदि शामिल थे, ने उसके उपयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया। मार्च 2009 में जर्मनी के सुप्रीम कोर्ट ने फ़ैसला सुनाया कि ईवीएम के माध्यम से मतदान असंवैधानिक है। 2009 के चुनाव परिणाम के बाद स्वयं भाजपा ने भी पुरज़ोर तरीक़े से ईवीएम प्रणाली पर सवाल उठाया था।

ईवीएम पर उठ रहे सवालों को केन्द्रीय चुनाव आयोग मुख्य रूप से दो तर्कों के आधार पर निराधार बताता है, और ईवीएम को अचूक घोषित करता है। पहला, उसे किसी भी प्रकार से इण्टरनेट से नहीं जोड़ा जा सकता या किसी भी प्रकार से उसे दूर से हैक नहीं किया जा सकता। दूसरा तर्क कि ईवीएम के अन्दर लगने वाली जो मेमोरी है वह मेमोरी ओटीपी यानी वन टाइम प्रोग्रामेबल मेमोरी है, और इसे छेड़ा या बदला नहीं जा सकता। पहली बात पर ज़्यादातर विशेषज्ञों का भी यह मानना है ईवीएम को दूर से हैक करना या इण्टरनेट की मदद से उसमें छेड़खानी करना अभी सम्भव नहीं है। यह सच है। लेकिन दूसरे तर्क पर कई प्रकार के विचारणीय और सुसंगत सवाल हैं। 2019 में *कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव* के वेंकटेश नायक द्वारा पूछे गए आरटीआई के सवाल से इस तर्क का विरोधाभास उजागर होता है। उन्होंने पाया कि *भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड* द्वारा बने ईवीएम और वीवीपीएटी में प्रयोग होने वाले माइक्रोकंट्रोलर्स का निर्माण अमेरिका आधारित कम्पनी *एनएक्सपी* द्वारा किया जाता है। जिस माइक्रोकंट्रोलर का विवरण ओटीपी के तौर पर दिया जा रहा है वह एनएक्सपी की वेबसाइट पर उपलब्ध विवरण से मेल नहीं खाता है। एनएक्सपी की वेबसाइट पर जो माइक्रोकंट्रोलर की विशेषताएँ हैं, उसके मुताबिक उसमें तीन प्रकार की मेमोरी का इस्तेमाल होता है SRAM, FLASH, EEPROM. एक कम्प्यूटर चिप जिसमें FLASH मेमोरी शामिल है वह ओटीपी यानी वन टाइम प्रोग्रामेबल नहीं हो सकती है। **तो चुनाव आयोग का यह दावा की मेमोरी से छेड़छाड़ करने की तकनीकी गुंजाइश है ही नहीं, हवा हो जाता है।** यही नहीं, ईवीएम में होने वाले सोर्स कोड के बारे में स्वयं चुनाव आयोग की तकनीकी मूल्यांकन समिति (टीईसी) का मत ग़ौरतलब है। टीईसी ने 1990 और 2006 की अपनी रिपोर्टों में कहा था कि भारतीय ईवीएम को हैक नहीं किया जा सकता है, क्योंकि एक बार सॉफ़्टवेयर माइक्रोचिप में डालने के बाद यह गुप्त रहता है और यहाँ तक कि निर्माण कम्पनी भी इसे नहीं पढ़ सकती है। लेकिन चुनाव आयोग की बुकलेट और 2013 की टीईसी रिपोर्ट संयुक्त रूप से बताती है कि अब यह स्थिति बदल गयी है। **2013 में टीईसी ने अपनी रिपोर्ट के उपशीर्षक 'ईवीएम कोड की पारदर्शिता' के तहत माना है कि ईवीएम इकाइयों के कोड को एक अनुमोदित बाहरी इकाई द्वारा पढ़ा या जाना जा सकता है। संक्षेप में कहें तो इसके कोड को एक्सेस किया जा सकता है।** विशेषज्ञ इस बात से सहमत हैं कि चुनाव आयोग की जानकारी के बिना **बड़ी संख्या में छेड़छाड़ की गयी या नकली ईवीएम को असली ईवीएम से बदलना तीन चरणों में सम्भव है। पहला, ईवीएम निर्माण करने वाली कम्पनियों भारत इलेक्ट्रॉनिक लिमिटेड (बीईएल) और इलेक्ट्रॉनिक कॉर्पोरेशन ऑफ इण्डिया लिमिटेड (ईसीआईएल) में ईवीएम-निर्माण चरण में; दूसरा, गैर-चुनाव अवधि के दौरान जिला स्तर पर जब ईवीएम को अपर्याप्त सुरक्षा प्रणालियों के साथ कई स्थानों पर पुराने गोदामों में संग्रहीत किया जाता है; और तीसरा, चुनाव से पहले प्रथम-स्तरीय जाँच के चरण में जब ईवीएम की सेवा बीईएल और ईसीआईएल के अधिकृत तकनीशियनों द्वारा की जाती है।**

अब जरा गौर कीजिए कि ईवीएम निर्माण में कौन लोग जुड़े हैं? भारत में प्रयोग होने वाले ईवीएम का निर्माण दो कम्पनियाँ करती हैं, भारत इलेक्ट्रॉनिक लिमिटेड (बीईएल) और इलेक्ट्रॉनिक कॉर्पोरेशन ऑफ इण्डिया लिमिटेड (ईसीआईएल)। **उनमें से एक कम्पनी 'भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड' के बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर्स में स्वतन्त्र निदेशक के रूप में भाजपा के चार पदाधिकारी और नामांकित व्यक्ति हैं!** मजेदार यह है कि जब चुनाव आयोग से इस तथ्य के बाबत पूछा गया तो उसने चुप्पी साध ली। क्या ऐसे में यह कयास लगाना निराधार है की ईवीएम निर्माण के समय ही उसमें धाँधली करने की गुंजाइश है? और ऐसी समेकित धाँधली जो बूथ लूटने तथा कैप्चर करने की तुलना में अधिक परिष्कृत है। **यही नहीं चुनाव आयोग ने इस बात का भी कोई माकूल जवाब नहीं दिया कि फैक्ट्री से चुनाव आयोग पहुँचने के बीच करीब 19 लाख मशीनें कहाँ गायब थीं**! चुनाव आयोग को जो 17.5 लाख वीवीपैट मशीन भेजी गयीं उनमें से क़रीब 4 लाख मशीनें ख़राब पायी गयीं। इन सब तथ्यों की रोशनी में यह बात ज़ाहिर है कि ईवीएम प्रणाली बेहद वाजिब सवालों के घेरे में है।

लेकिन सुप्रीम कोर्ट तक इस मसले पर तत्काल क़दम उठाकर, जनता के शक़ को दूर करते हुए ईवीएम से चुनावों को रद्द कर चुनाव आयोग को मतपत्र से मतदान करवाने का आदेश देने के बजाय याचिका डालने वालों को ही डपट रहा है और चुनाव आयोग की हर बात को यूँ मान ले रहा है कि वह झूठ बोल ही नहीं सकता। साथ में, विलम्ब कर-करके वीवीपैट पर्चियों से मिलान की बात पर चुनाव आयोग से जवाब माँगा जा रहा है। इस विलम्ब का नतीजा यह होगा कि 2024 के चुनाव इसी सन्देहास्पद प्रणाली से हो जायेंगे और फिर इन सारी सुनवाइयों का और चुनाव आयोग को विलम्ब कर-करके जवाबतलब किये जाने का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। ऐसे में, जनता को व्यापक पैमाने पर सड़कों पर उतरकर इस प्रणाली से चुनाव करवाये जाने का पुरज़ोर विरोध करना चाहिए। अन्य पूँजीवादी पार्टियाँ इस मसले पर सड़क पर उतरने और जनता को सड़कों पर उतारने का साहस खो चुकी हैं। ऐसे में, जनता को स्वयं अपने जुझारू जनान्दोलन के ज़रिये ईवीएम के इस्तेमाल पर रोक लगाने के लिए व्यवस्था को बाध्य करना होगा।

फैक्ट्री से चुनाव आयोग तक पहुँचने के बीच 18 लाख 94 हज़ार से भी ज़्यादा ईवीएम मशीनें ग़ायब हो गयीं! बॉम्बे हाईकोर्ट में इस पर 2022 में दायर एक याचिका अभी लम्बित ही है।

वीवीपैट बनाने वाली दो सरकारी कम्पनियों की तीन फैक्ट्रियों से चुनाव आयोग को भेजी गयी 17 लाख 50 हज़ार मशीनों में से करीब 4 लाख, यानी लगभग एक-चौथाई मशीनें ख़राब पायी गयी हैं।

2019 के आम चुनाव में 373 सीटों पर डाले गये कुल वोटों और सभी उम्मीदवारों को मिले कुल वोटों की संख्या में अन्तर मिला

मथुरा सीट पर ईवीएम में कुल 10,88,206 वोट पड़े जबकि मतगणना में सभी उम्मीदवारों को मिले वोटों की संख्या थी - 10,08,112 यानी दोनों में 9906 वोटों का भारी अन्तर था। तीन अन्य सीटों पर 18,331, 17,871 और 14,512 वोटों का अन्तर पाया गया।

करावल नगर के बादाम मज़दूरों की हड़ताल की जीत

(पेज 3 से आगे)

आम आदमी पार्टी, कांग्रेस सभी इन्हीं धन्नासेठों, गोदाम मालिकों के लिए काम करने वाली पार्टियाँ है, हमें इन विकल्पों को ख़ारिज करते हुए मेहनतकशों के स्वतंत्र विकल्प को मज़बूत करना होगा। मेहनतकशों के संसाधनों के दम पर चलने वाली पार्टी ही उनका नेतृत्व कर सकती है और उनकी माँगों के लिए जुझारू तरीक़े से लड़ सकती है।"

26 मार्च को निकाले गये विजय जुलूस के बाद हुई सभा में न सिर्फ़ एक स्वतन्त्र और क्रान्तिकारी इलाक़ाई यूनियन को खड़ा करने की ज़रूरत पर बात हुई बल्कि मुनाफ़े पर टिकी इस व्यवस्था के ख़िलाफ़ संघर्ष तेज़ करने की भी बात हुई। जीत के मौके पर आयोजित कार्यक्रम में क्रान्तिकारी गीतों की प्रस्तुति की गयी। सफ़दर हाशमी द्वारा लिखित नाटक 'एक मेहनतकश औरत की कहानी' का मंचन किया गया। एक-दूसरे को रंग और गुलाल लगाकर हड़ताल की सफलता को मज़दूरों ने मनाया और एक स्वर में यह ऐलान किया कि आने वाले दिनों में अपने संघर्ष को अगली मंज़िल में ले जाने की तैयारी करेंगे व साथ में मेहनतकशों की लूट पर टिकी इस व्यवस्था को चकनाचूर करने के लिए भी संघर्ष जारी रखेंगे।

हमारी चुनौतियाँ, हमारे कार्यभार, हमारा कार्यक्रम

(पेज 1 से आगे)

राजनीतिक विरोध को प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: कुचलता है। इसमें तमाम प्रकार के पूँजीवादी राजनीतिक विरोध भी शामिल हैं, चाहे वे संसदीय दायरे में हों या ग़ैर-संसदीय दायरे में हों। दूसरे शब्दों में, यह उस सीमित जनवादी स्पेस और उन सीमित जनवादी अधिकारों को भी समाप्त करता है, जो एक पूँजीवादी लोकतन्त्र में हमें हासिल होते हैं। निश्चित तौर पर, यह दूसरा फ़र्क़ पहले फ़र्क़ को भी और ज़्यादा बढ़ा देता है, यानी जब यह स्पेस समाप्त होता है, तो फिर जनता की क्रान्तिकारी शक्तियों का दमन भी पहले से कहीं ज़्यादा बर्बर और नग्न रूप अख़्तियार करता है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि ये सीमित जनवादी अधिकार व स्पेस भी पूँजीपति वर्ग आम जनता को तोहफ़े में नहीं देता, बल्कि जनता लड़कर और क़ुर्बानियाँ देकर हासिल करती है। आज के समय में यह किस प्रकार हो रहा है, इस पर दो शब्द कहना यहाँ प्रासंगिक होगा।

आज के दौर में हिटलर या मुसोलिनी के दौर के विपरीत, फ़ासीवादी शक्तियाँ यह काम, यानी पूँजीवादी लोकतन्त्र द्वारा दिये गये सीमित जनवादी स्पेस व अधिकारों को समाप्त करने का काम, *आम तौर पर,* कोई आपवादिक तानाशाहाना क़ानून लाकर नहीं करती हैं, जिसके तहत चुनावों, संसद और विधानसभाओं को औपचारिक तौर पर भंग कर दिया जाता है, अन्य सभी पूँजीवादी दलों को ग़ैर-क़ानूनी घोषित कर दिया जाता है। मुसोलिनी की फ़ासिस्ट पार्टी ने इटली में और हिटलर की नात्सी पार्टी ने जर्मनी में यही किया था। लेकिन आज के दौर में फ़ासीवादी शक्तियाँ यह रणनीति नहीं अपनाती हैं। **आज के दौर में, *आम तौर पर,* फ़ासीवादी शक्तियाँ यह काम पूँजीवादी जनवाद के खोल को बरक़रार रखते हुए और राज्यसत्ता पर भीतर से फ़ासीवादी क़ब्ज़ा करते हुए करती हैं।** हमारे देश में फ़ासीवादी उभार का इतिहास फ़ासीवाद की इस नयी रणनीति और रणकौशल का जीता-जागता गवाह है। *निश्चित तौर पर, इसमें फ़ासीवादी पार्टी, किन्हीं स्थितियों में चुनाव हारकर सरकार से बाहर अवश्य जा सकती है।* लेकिन *तब भी,* बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के फ़ासीवादी उभारों से उलट, राज्यसत्ता का फ़ासीवादीकरण और टुटपुँजिया वर्गों का प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन समाप्त नहीं होता या ढह नहीं जाता है, जैसा कि जर्मनी और इटली में हुआ था, *यानी, फ़ासीवाद का द्रुत गति से हुआ उभार और फिर उतनी ही द्रुत गति से हुआ ध्वंस* और ऐसा ध्वंस कि इन देशों में लम्बे समय तक खुले तौर पर नात्सी या फ़ासीवादी पहचान के साथ राजनीति कर पाना किसी धुर दक्षिणपन्थी पूँजीवादी शक्ति के लिए लगभग असम्भव था। यह अब जाकर नवउदारवाद के दौर में हो रहा है कि नये सिरे से ऐसी धुर दक्षिणपन्थी व प्रतिक्रियावादी पूँजीवादी राजनीति इन देशों में भी पैदा हो पा रही है, जो घुमा-फिराकर और कुछ शर्म के साथ ही सही, पर फ़ासीवादी या नात्सी राजनीति की हिमायत कर रही हैं।

लुब्बेलुआब यह कि आज के दौर में, यदि फ़ासीवादी पार्टी चुनाव हारकर सरकार से बाहर भी जाती है तो फ़ासीवादी पार्टी और फ़ासीवादी आन्दोलन समाज में मज़बूती के साथ मौजूद रहते हैं, राज्यसत्ता के समूचे उपकरण पर उनकी पकड़ मौजूद रहती है, सरकार से बाहर होकर भी वे मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी के लिए पूँजीपति वर्ग की अनौपचारिक सत्ता व शक्ति का काम करते रहते हैं और मौजूदा आर्थिक मन्दी और उससे पैदा होने वाली सामाजिक-आर्थिक असुरक्षा और अनिश्चितता के माहौल में फ़ासीवादी पार्टी फिर से, और पहले से ज़्यादा आक्रामक ढंग से, चुनाव जीतकर सरकार में वापस आती है। यह मिर्गी के दौरों के समान होता है, जो लहरों में आता है और बढ़ता जाता है। हमारे देश का इतिहास पिछले लगभग 3 दशकों के दौरान इसी प्रक्रिया का साक्षी बना है। *यह चक्र अब केवल मज़दूर क्रान्ति और समाजवादी सत्ता व व्यवस्था की स्थापना के साथ ही रोका जा सकता है।*

इसलिए आज के दौर में आम तौर पर दुनिया में कहीं भी फ़ासीवादी शक्तियाँ पूँजीवादी जनवाद के खोल का परित्याग नहीं करेंगी क्योंकि ऐसा करना उनके उभार को ज़्यादा क्षणभंगुर और कम वर्चस्वकारी बनाता है। आम तौर पर, वह इस खोल को बरक़रार रखते हुए, पूँजीवादी जनवाद की अन्तर्वस्तु को इतना निर्बल कर देंगी कि व्यवहारत: उसका केवल खोल या रूप ही बचा रह जायेगा। भारत जैसे सापेक्षिक रूप से पिछड़े, उत्तर-औपनिवेशिक पूँजीवादी देश में और विशेष तौर पर साम्राज्यवादी नवउदारवादी भूमण्डलीकरण के दौर में, जहाँ पूँजीपति वर्ग में जनवादी सम्भावना-सम्पन्नता पहले से ही पश्चिमी यूरोप या अमेरिकी पूँजीवाद व पूँजीपति वर्ग की तुलना में बेहद कमज़ोर रही है, वहाँ फ़ासीवादी शक्तियों के लिए यह काम करना वैसे भी अपेक्षाकृत आसान था।

वापस मूल सवाल पर आते हैं। आज हमारे देश में फ़ासीवादी मोदी सरकार और समूचा संघ परिवार यही कर रहा है। वह पूँजीवादी जनवाद के खोल को बरक़रार रखते हुए उसकी समूची अन्तर्वस्तु को इतना निर्बल बना रहा है कि व्यवहारत: और वस्तुत: बस उसका खोल ही बचा रह जाये। जो चीज़ *विशिष्ट तौर पर* इस बात को दिखला रही है, वह है, न सिर्फ मज़दूर वर्ग व आम जनता की क्रान्तिकारी शक्तियों व आन्दोलनों को पहले से कहीं ज़्यादा तानाशाहाना अन्दाज़ में कुचलना (जो कि मात्रात्मक अन्तर के साथ कोई भी पूँजीवादी शासक पार्टी करती), **बल्कि ख़ास तौर पर हर प्रकार के संसदीय और ग़ैर-संसदीय पूँजीवादी राजनीतिक विपक्ष या विरोध को भी समाप्त कर देना।** प्रमुख विपक्षी पार्टी कांग्रेस के खातों को सील कर देना, उन्हें सरकारी एजेंसियों द्वारा लगातार प्रताड़ित करना, आम आदमी पार्टी के समूचे शीर्ष नेतृत्व को उठाकर जेल में डाल देना, अन्य विपक्षी या विपक्षी बन सकने वाली पार्टियों को सरकारी एजेंसियों व धनबल के बूते तोड़ देना, या अपने में शामिल कर लेना या डरा-धमकाकर उन्हें चुप करा देना, इसी प्रक्रिया का अंग है। *2019 से 2024 के बीच फ़ासीवादी उभार की यह बेहद महत्वपूर्ण और उसकी पहचान करने वाली विशिष्टता साफ़ तौर पर सामने आयी है। 2019 से 2024 के बीच फ़ासीवादी उभार और राज्यसत्ता के फ़ासीवादीकरण की प्रक्रिया गुणात्मक रूप से एक नये चरण में पहुँच गयी है।*

कई लोग सवाल पूछते हैं : **सर्वहारा वर्ग और आम मेहनतकश जनता पूँजीवादी जनवाद को बचाने के लिए भला क्यों चिन्ता और सरोकार रखे?** ऐसे लोग, जो "वामपन्थी" भटकाव या हिरावलपन्थ के भटकाव का शिकार होते हैं, यह सवाल पूछते हैं, "सर्वहारा वर्ग और आम मेहनतकश जनता को पूँजीवादी जनवाद को बचाने के लिए प्रयास क्यों करना चाहिए? क्या सर्वहारा वर्ग का लक्ष्य पूँजीवादी जनवाद है? उसका लक्ष्य तो समाजवादी जनवाद यानी सर्वहारा अधिनायकत्व है!" ऐसे भटकाव की कुछ ख़ासियतें हैं, जिन्हें हम मज़दूरों-मेहनतकशों को समझना चाहिए।

पहली ख़ासियत यह है कि यह भटकाव *ऐतिहासिक मूल्यांकन व दूरगामी राजनीतिक लक्ष्य* और *वर्तमान राजनीतिक वर्ग स्थिति के मूल्यांकन और तात्कालिक राजनीतिक कार्यक्रम* में अन्तर नहीं कर पाता है। ऐतिहासिक तौर पर, पूँजीवादी जनवाद जनता को कुछ नया नहीं दे सकता। वह जो दे सकता था, वह दे चुका है। सर्वहारा वर्ग का दूरगामी राजनीतिक कार्यक्रम निश्चित ही समाजवादी क्रान्ति है। लेकिन तात्कालिक राजनीतिक कार्यक्रम मौजूदा राजनीतिक हालात के अध्ययन के आधार पर ही बन सकता है। लेनिन ने बताया था कि सर्वहारा वर्ग एक *राजनीतिक वर्ग, यानी अपनी सत्ता स्थापित करने के राजनीतिक प्रोजेक्ट से लैस वर्ग,* केवल तभी बन सकता है, जब वह केवल अपने और पूँजीपति वर्ग के बीच के रिश्तों को ही नहीं समझता है, बल्कि पूँजीवादी समाज में मौजूद सभी वर्गों के बीच के आपसी रिश्तों को समझता है। केवल तभी वह अपने *तात्कालिक विशिष्ट आर्थिक हितों* से आगे जाकर अपने *दूरगामी सामान्य राजनीतिक हितों* के बारे में सोच सकता है और व्यापक आम मेहनतकश जनता को अपनी हिरावल पार्टी की अगुवाई में क्रान्तिकारी नेतृत्व दे सकता है। *अब सवाल यह बनता है कि आज की राजनीतिक वर्ग स्थिति में, राजनीतिक तौर पर, क्या यह आम मेहनतकश जनता के हित में है कि पूँजीवादी जनवाद (चाहे वह हमें कितने भी सीमित जनवादी अधिकार देता हो!) समाप्त हो जाये और उसकी जगह कोई फ़ासीवादी सत्ता, कोई सैन्य तानाशाही या कोई बोनापार्तवादी तानाशाही की सरकार आ जाये या फिर हम वापस राजतन्त्र के युग में चले जायें?* नहीं। इसका अर्थ होगा उस ज़मीन और जगह को खोना जहाँ पर सर्वहारा वर्ग के लिए आम मेहनतकश जनता के वर्ग संघर्षों को सबसे बेहतर ढंग से विकसित किया जा सकता है।

इसलिए ऐतिहासिक तौर पर निश्चय ही सर्वहारा वर्ग का मूल्यांकन यही है कि पूँजीवादी जनवाद अब जनता को कुछ नया नहीं दे सकता और उसका दूरगामी राजनीतिक कार्यक्रम यही है कि पूँजीवादी जनवाद पर रुकना नहीं है और उसका ऐतिहासिक प्रोजेक्ट और लक्ष्य ही है इससे आगे जाना, यानी समाजवादी क्रान्ति के ज़रिये सर्वहारा जनवाद (या सर्वहारा अधिनायकत्व) तक जाना जो सच्चे मायने में बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी के लिए सच्चा जनवाद होगा। *लेकिन वहाँ जाने के लिए जो राजनीतिक वर्ग संघर्ष विकसित करना सर्वहारा वर्ग के लिए अनिवार्य है, उसके लिए सबसे उपयुक्त सन्दर्भ पूँजीवादी जनवाद मुहैया कराता है, चाहे वह कितने ही सीमित अधिकार व स्पेस क्यों न दे।*

पूँजीवादी लोकतन्त्र में, ये जनवादी अधिकार और स्पेस एक ओर जनता के जुझारू संघर्षों से हासिल होते हैं, ***वहीं विभिन्न पूँजीवादी दलों की आपसी राजनीतिक प्रतिस्पर्द्धा के कारण भी यह स्पेस सीमित तौर पर पैदा होता है।*** यदि पूँजीवादी राजनीति के दायरे के भीतर कोई विपक्ष मौजूद न रहे, या विपक्ष बस औपचारिक तौर पर मौजूद रहे और फ़ासीवादी शासन द्वारा उसे दन्त-नखविहीन बना दिया गया हो, छिन्न-भिन्न कर दिया गया हो, पूर्णत: विकलांग बना दिया गया हो, तो पूँजीवादी दलों की आपसी प्रतिस्पर्द्धा से पैदा होने वाला जो स्पेस होता है वह भी समाप्त हो जाता है। बाक़ी अधिकारों व स्पेस को तो फ़ासीवादी शासन तरह-तरह के तानाशाहाना क़ानूनों और आम मेहनतकश जनता के दमन के ज़रिये समाप्त करता ही है। *यही वजह है कि फ़ासीवादी उभार की यह विशिष्ट विशिष्टता है कि वह हर प्रकार के राजनीतिक विरोध को समाप्त करता है, चाहे वह पूँजीवादी दायरे में हो या न हो। ऐसे में, पूँजीवादी जनवाद द्वारा मिलने वाले सीमित जनवादी अधिकार व स्पेस भी समाप्त होते हैं।* यह एक अलग राजनीतिक वर्ग स्थिति का निर्माण करता है, जिसके आधार पर कोई भी वैज्ञानिक व 'ठोस परिस्थितियों का ठोस विश्लेषण' करने वाली क्रान्तिकारी शक्ति अपना तात्कालिक राजनीतिक कार्यक्रम तय करती है। इस पर हम थोड़ा आगे और विस्तार से बात करेंगे कि आज के दौर में यह तात्कालिक राजनीतिक कार्यक्रम क्या हो सकता है।

"वामपन्थी" और हिरावलपन्थियों की **दूसरी ख़ासियत** यह होती है कि वे ठोस परिस्थितियों का ठोस विश्लेषण नहीं करते और अमूर्त चिन्तन करते हैं। *वे जनता को इसलिए नेतृत्व नहीं दे सकते क्योंकि वे उस काम को आज ही कर देना चाहते हैं, जिसे जनता की और साथ ही हिरावल की लम्बी तैयारी के बाद और वस्तुगत अन्तरविरोधों के सन्धिबिन्दु के निर्माण के बाद कल या परसों ही किया जा सकता है।* वे जनता के बीच क्रान्तिकारी जनदिशा को लागू कर सही राजनीतिक लाइन निकालने के बजाय, अमूर्त चिन्तन के आधार पर अपनी राजनीतिक लाइन निकालते हैं। वे ऐतिहासिक मूल्यांकन और तात्कालिक राजनीतिक कार्यक्रम के बीच फ़र्क़ नहीं करते हैं। नतीजतन, आज भी कुछ ऐसे "वामपन्थी" और हिरावलपन्थी कम्युनिस्ट हैं, जो या तो चुनावों के बहिष्कार का नारा दे रहे हैं, जो राजनीतिक वर्ग चेतना की मौजूदा स्थिति और वस्तुगत राजनीतिक वर्ग संघर्ष की मौजूदा स्थिति में कोई सुनता नहीं है! या फिर कुछ ऐसे लोग हैं जो क्रान्ति कर डालने की कुछ ज़्यादा ही जल्दी में हैं और जनता पर भरोसा करने के बजाय कुछ बहादुर हथियारबन्द लोगों के दस्तों के बूते तत्काल सशस्त्र संघर्ष के ज़रिये "क्रान्ति" कर डालना चाहते हैं।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इसके विपरीत भटकाव के शिकार हैं। उसे हम ऐसा संशोधनवादी, सुधारवादी और समझौतापरस्ती का भटकाव कह सकते हैं जिससे पीड़ित लोग फ़ासीवादी शक्तियों को सरकार से बाहर करने के संघर्ष को (जिसे वे ग़लती से फ़ासीवाद को निर्णायक रूप से पराजित करना समझ बैठते हैं!) आगे ले जाने के नाम पर *सकारात्मक तौर पर* किसी अन्य पूँजीवादी पार्टी

(पेज 9 पर जारी)

हमारी चुनौतियाँ, हमारे कार्यभार, हमारा कार्यक्रम

(पेज 8 से आगे)

या पूँजीवादी पार्टियों के गठबन्धन को वोट देने का नारा जनता के बीच प्रचारित करते हैं। **यह सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक स्वतन्त्रता का आत्मसमर्पण है। क्यों?** क्योंकि जब कोई सर्वहारा पार्टी फ़ासीवाद को हराने के लिए किसी निश्चित बुर्जुआ दल या बुर्जुआ दलों के गठबन्धन को सकारात्मक तौर पर वोट देने और समर्थन करने की अपील करते हैं, तो यह उनके तात्कालिक राजनीतिक कार्यक्रम का सीधा समर्थन होता है, चाहे वह रणकौशलात्मक क़दम के नाम पर किया जाय तो भी। *रणकौशलात्मक क़दम रणनीति की कीमत पर नहीं उठाये जाते बल्कि उसके मातहत होते हैं, जैसा कि स्तालिन ने स्पष्ट किया था।* यह लेनिनवाद की एक बुनियादी शिक्षा है। अगर ऐसा न हो तो अवसरवाद और रणकौशल में कोई फ़र्क़ नहीं रह जायेगा और अक्सर संशोधनवादी यही फ़र्क़ मिटा देते हैं और रणकौशल के नाम पर सुधारवादी व संशोधनवादी अवसरवाद करते हुए सीधे किसी पूँजीवादी दल या पूँजीवादी दलों के गठबन्धन की गोद में जा बैठते हैं। *जब कोई सर्वहारा पार्टी ऐसा करती है, तो वह अपनी राजनीतिक अवस्थिति की स्वतन्त्रता का परित्याग करती है और भविष्य में भी सर्वहारा वर्ग के स्वतन्त्र पक्ष का निर्माण करने पर अपने दावे को छोड़ देती है।*

ऐसे में, जबकि देश में फ़ासीवादी उभार गुणात्मक रूप से एक नये चरण में प्रवेश कर चुका है, एक सर्वहारा पार्टी की सही रणनीति, आम रणकौशल और आज के समय का विशिष्ट रणकौशल क्या होना चाहिए? यह एक ज़रूरी बहस का मुद्दा है क्योंकि आज जो कुछ हो रहा है, वह कई मायनों में बुनियादी तौर पर नया है और ऐसा कुछ पहले नहीं हुआ है। आज हो रहे परिवर्तनों में नये का पहलू प्रधान है। इसकी वजह फ़ासीवादी उभार की प्रकृति और चरित्र में आये वे परिवर्तन हैं, जिनका हम ऊपर ज़िक्र कर चुके हैं। इन परिवर्तनों के आधार पर सर्वहारा नज़रिये से नयी रणनीति, नये आम रणकौशल और आज की विशिष्ट राजनीतिक परिस्थिति में नये विशिष्ट रणकौशलों को चिह्नित करना ज़रूरी है।

पहली बात तो यह है कि हमें फ़ासीवाद की सम्भावित चुनावी हार के बारे में यथार्थवादी होने की आवश्यकता है। एक तो इसकी सम्भावना फिलहाल कम नज़र आ रही है, हालाँकि निश्चित तौर पर पिछले चार-पाँच महीनों के दौरान यह सम्भावना बढ़ती नज़र आयी है। दूसरा, अगर यह सम्भावना वास्तविकता में बदल भी जाये, तो फ़ासीवाद की इस चुनावी हार को फ़ासीवाद की आम हार या निर्णायक हार के रूप में व्याख्यायित करने के वही नतीजे होंगे, जो 2004 और 2009 में फ़ासीवाद की चुनावी हार पर जश्न मनाने के हुए थे। उसकी सज़ा लोगों को 2014 और 2019 में भुगतनी पड़ी थी।

दूसरी बात, अगर मोदी सरकार 2024 में लोकसभा चुनाव हारती है तो इससे ज़्यादा से ज़्यादा फ़ासीवादी उभार को एक तात्कालिक नुकसान व झटका पहुँचेगा। राज्यसत्ता के फ़ासीवादीकरण की परियोजना पहले ही एक निर्णायक स्तर पर पहुँच चुकी है। निश्चित ही वह अभी भी जारी है और वह जारी ही रहेगी, क्योंकि हम जिस राजनीतिक क्षेत्र, यानी राज्यसत्ता, की बात कर रहे हैं, वह अन्तरविरोधों की जगह है। पूँजीवादी जनवाद का खोल बचाये रखना फ़ासीवाद को दीर्घजीवी बनाये रखने के लिए आवश्यक है, यह बात आज दुनियाभर की फ़ासीवादी ताक़तें समझ चुकी हैं। लेकिन इसके साथ ही इस खोल को बरक़रार रखने के साथ कुछ अन्तरविरोध भी आते हैं। इसलिए भी फ़ासीवाद द्वारा राज्यसत्ता के आन्तरिक टेकओवर की परियोजना आज के युग में कभी **पूर्ण** नहीं होगी, बल्कि सतत् जारी ही रहेगी। चुनावी हार से इस परियोजना के आगे बढ़ने की गति को झटका लग सकता है, वह बाधित हो सकती है, लेकिन वह समाप्त नहीं होगी। औपचारिक तौर पर और आंशिक तौर पर तात्कालिक कार्यकारी निकाय यानी सरकार फ़ासीवादी पार्टी के हाथ से जाने के कुछ तात्कालिक नुकसान फ़ासीवादी शक्तियों को ज़रूर होंगे। लेकिन चुनावी हार से इससे ज़्यादा उम्मीद लगाने वाले नादान लोगों को आने वाले समय में फिर वैसा ही झटका लगेगा जैसा कि 2014 और फिर 2019 में लग चुका है।

तीसरी बात, इस तात्कालिक झटके के कारण फ़ासीवादी शक्तियों द्वारा राज्यसत्ता के अबाध और व्यवस्थित टेकओवर की प्रक्रिया की गति और आक्रामकता में जो अस्थायी कमी आयेगी, वह केवल जनता की क्रान्तिकारी शक्तियों को कुछ मोहलत दे सकती है कि वे अपनी शक्तियों को संचित कर सकें, उनका विस्तार कर सकें, जनता के बीच फ़ासीवाद-विरोधी राजनीतिक माहौल को सुदृढ़ कर सकें, अपनी लड़ाकू शक्ति को संगठित कर सकें।

कोई पूछ सकता है कि अब तक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट ताक़तों ने ऐसा क्यों नहीं किया? तो निश्चित ही इस पर क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट ताक़तें अपनी आत्मालोचना ही कर सकती हैं! कम्युनिस्ट आन्दोलन के भीतर लम्बे समय से हावी ग़लत विचारधारात्मक लाइन, ग़लत राजनीतिक लाइन और ग़लत कार्यक्रम के कारण एक शक्तिशाली क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन और एक क्रान्तिकारी जनान्दोलन नहीं खड़ा हो सका। आज इस ठहराव को तोड़ने की अर्थपूर्ण कोशिश हो रही है। लेकिन यह अलग चर्चा का विषय है जिसके विस्तार में हम नहीं जा सकते। *आज की वस्तुस्थिति यही है कि जनता की शक्तियाँ कमज़ोर हैं और बिखरी हुई हैं और क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट शक्ति को नये सिरे से और देश के पैमाने पर निर्मित करने, जनता के जुझारू जनान्दोलनों को खड़ा करने और उसकी शक्ति को संचित और संगठित करने के लिए एक समय, एक मोहलत और एक मौक़े की ज़रूरत है और ठीक इसीलिए बचे-खुचे जनवादी स्पेस व सीमित जनवादी अधिकारों की रक्षा करने और उन्हें विस्तारित करने की ज़रूरत है।* इसके लिए तात्कालिक राजनीतिक कार्यभार यह है कि 2024 के चुनावों में फ़ासीवादी मोदी-शाह सरकार को हराया जाये। फ़ासीवादी शक्तियों का 5 साल के लिए भी सरकार से बाहर जाना क्रान्तिकारी शक्तियों को वह मोहलत, वह मौक़ा दे सकता है, जिसकी इस समय उन्हें ज़रूरत है।

इस तात्कालिक राजनीतिक कार्यभार को पूरा करने के लिए आने वाले लोकसभा चुनावों में तात्कालिक राजनीतिक कार्यक्रम क्या हो सकता है? इस कार्यक्रम के दो हिस्से हैं:

पहला, मार्क्सवादी-लेनिनवादी उसूलों के अनुसार, जहाँ कहीं मज़दूर पार्टी अपने उम्मीदवार खड़े कर सकती है, उसे ज़रूर खड़े करने चाहिए। हम याद दिलाना चाहेंगे कि पूँजीवादी चुनावों में रणकौशलात्मक भागीदारी की कम्युनिस्ट लाइन के दो बुनियादी मक़सद होते हैं : पहला, समाजावादी कार्यक्रम का प्रचार और उसे आम मेहनतकश जनता में उनके जीवन की ठोस समस्याओं और उनके ठोस समाधान से जोड़ते हुए लोकप्रिय बनाना। पूँजीवादी संकट के दौर में आम मेहनतकश जनता के जीवन की बढ़ती बरबादी और असुरक्षा में यह काम अपेक्षाकृत ज़्यादा आसान होता जाता है। दूसरा, जनता के बीच चुनावों के क्षेत्र में एक स्वतन्त्र सर्वहारा पक्ष का निर्माण करना। निश्चित तौर पर, जहाँ कहीं भी एक क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी अपने उम्मीदवार खड़े करती है, वहाँ उन्हें जिताने के लिए भी भरपूर प्रयास करती है। लेकिन जीत ही उनकी चुनावी भागीदारी का अन्तिम और बुनियादी मक़सद नहीं होता। याद रखना चाहिए कि रूस में मज़दूर इंक़लाब से ठीक पहले भी बोल्शेविक पार्टी रूसी संसद यानी दूमा में बेहद कम ही सीटें जीतती थी। एक पूँजीवादी चुनावी व्यवस्था बनी ही इस प्रकार से होती है कि उसमें पूँजीपति वर्ग के नुमाइन्दे विशेष तौर पर फ़ायदेमन्द स्थिति में होते हैं और *आम तौर पर* इसकी गुंजाइश कम होती है कि किसी क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के अधिकांश उम्मीदवार जीतें, या पूँजीवादी विधायिका में बहुमत में आ जायें। आने वाले चुनावों में भी क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी को अपने उम्मीदवार जहाँ कहीं सम्भव हो, ज़रूर खड़े करने चाहिए। यदि वह सभी सीटों पर अपने उम्मीदवार खड़े करने की स्थिति में होती, तो तात्कालिक राजनीतिक कार्यक्रम के दो हिस्से नहीं होते, जिसमें से दूसरे पर हम आगे आयेंगे। उस सूरत में मज़दूर पार्टी एक ही नारा देती: मज़दूर पार्टी के उम्मीदवार को वोट दें, उसे विजयी बनायें। अपने इस नारे के साथ वह व्यापक मेहनतकश जनता के बीच अपने दूरगामी व तात्कालिक कार्यक्रम का पुरज़ोर प्रचार करती। लेकिन हम सभी जानते हैं कि आज ऐसी स्थिति नहीं है। अधिकांश सीटों पर जनता के सामने भाजपा, इण्डिया गठबन्धन; माकपा, भाकपा (माले) व भाकपा जैसी संशोधनवादी पार्टियों व अन्य क्षेत्रीय पार्टियों के ही उम्मीदवार होंगे, क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी का कोई उम्मीदवार नहीं होगा। *ऐसे में, मौजूदा राजनीतिक वर्ग स्थिति में, क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी उन सीटों पर क्या जनता को कोई नारा नहीं देगी?* नहीं! यह स्थानीयतावाद होगा जो ऐसी पार्टी को कभी जनता के सामने एक विकल्प बनकर उभरने नहीं देगा। निश्चित तौर पर, वह समूची जनता के सामने एक कार्रवाई का कार्यक्रम पेश करेगी, चाहे वह जनता उन निर्वाचन क्षेत्रों की ही क्यों न हो, जहाँ मज़दूर पार्टी अपने उम्मीदवार खड़े करने की स्थिति में फिलहाल नहीं है। यही प्रश्न हमें इस तात्कालिक राजनीतिक कार्यक्रम के दूसरे हिस्से पर लाता है।

आज की राजनीतिक स्थिति में एक क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के तात्कालिक राजनीतिक कार्यक्रम का **दूसरा हिस्सा** है अन्य सभी सीटों पर फ़ासीवादी मोदी सरकार व भाजपा को हराने का ***नकारात्मक नारा*** देना। अब यहीं से "वामपन्थी" भटकाव के शिकार लोगों और दक्षिणपन्थी अवसरवादियों, दोनों के ही दिमाग़ों में अलग-अलग तरीक़े से भयंकर भ्रम की शुरुआत होती है।

"वामपन्थी" भटकावग्रस्त लोग क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी से शिक़ायत करते हैं कि यह तो 'इण्डिया' ब्लॉक को समर्थन देना होगा! हम कहते हैं कि आप दो चीज़ों में फ़र्क़ नहीं कर रहे। *सकारात्मक नारा और नकारात्मक नारा।* निश्चित तौर पर बाक़ी निर्वाचन मण्डलों में अगर क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी फिलहाल अपने उम्मीदवार नहीं खड़े कर सकती (जिस कमज़ोरी के लिए उसकी आलोचना या उसके द्वारा स्वयं अपनी आत्मालोचना एक दीगर मसला है), तो यही वह "मजबूरी का विकल्प" है, जिसे अपनाया जा सकता है। लेकिन इस विकल्प को चुनने के दो रास्ते हो सकते हैं: पहला, सीधे 'इण्डिया' ब्लॉक या किसी अन्य पूँजीवादी दल का समर्थन कर उसे वोट देने का नारा जनता के बीच दिया जाये। यह भयंकर समझौतापरस्ती और अवसरवाद होगा जो सर्वहारा अवस्थिति की स्वतन्त्रता को नष्ट कर देगा। भविष्य में भी मज़दूर पार्टी अपने आपको जनता के समक्ष एक स्वतन्त्र पक्ष और एक व्यावहारिक विकल्प के तौर पर खड़ा करने की क्षमता खो बैठेगी। वजह हम ऊपर स्पष्ट कर चुके हैं : यह सर्वहारा वर्ग की स्वतन्त्र राजनीतिक अवस्थिति का सरेण्डर या आत्मसमर्पण होगा, यह सकारात्मक तौर पर किसी पूँजीवादी दल के राजनीतिक कार्यक्रम का समर्थन होगा और जनता को सीधे व सकारात्मक तौर पर उसका पिछलग्गू बनाना होगा। ठीक इसीलिए किसी निश्चित पूँजीवादी दल या पूँजीवादी दलों के गठबन्धन को वोट करने का नारा देना राजनीतिक तौर पर ग़लत है।

दूसरा तरीक़ा है, जो दी गयी ठोस राजनीतिक वर्ग स्थिति में सही सर्वहारा तरीक़ा है। यह तरीक़ा है एक ***नकारात्मक नारा*** देने का। मज़दूर पार्टी को केवल यह आह्वान करना चाहिए कि *क्या नहीं चुनना है।* उसे केवल यह बताना चाहिए कि सभी पूँजीवादी दल मज़दूर-विरोधी हैं, मेहनतकश-विरोधी हैं और आम तौर पर जनविरोधी हैं; लेकिन फिर भी उनमें और फ़ासीवादी पूँजीवादी दल में अन्तर करना राजनीतिक तौर पर महत्वपूर्ण है। यह समझना आवश्यक है कि राजनीतिक जनवाद (चाहे वह कितना भी सीमित हो) सर्वहारा वर्ग के लिए ज़रूरी है और सर्वहारा वर्ग उसके लिए संघर्ष करता है। लेकिन उसके लिए संघर्ष वह इस या उस पूँजीवादी दल की गोद में बैठकर, राजनीतिक तौर पर उसे समर्थन देकर और उसका पिछलग्गू बनकर नहीं करता है। क्योंकि यह उसकी राजनीतिक स्वतन्त्रता के उसूल के ख़िलाफ़ है और उसे भविष्य में भारी नुकसान पहुँचाता है। ऐसा वह अपनी स्वतन्त्र सर्वहारा अवस्थिति से करता है। अब यहाँ फिर से एक को दो में बाँटते हैं। स्वतन्त्र सर्वहारा अवस्थिति से विरोध करने के दो ही सम्भव रास्ते हैं : एक, सभी या अधिकांश सीटों पर सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी अपने उम्मीदवार खड़े करती है और जनता के बीच चुनावों के मंच का इस्तेमाल करते हुए फ़ासीवाद-विरोधी प्रचार भी सबसे प्रभावी तरीक़े से चलाती है और साथ ही आम तौर पर समाजवादी कार्यक्रम का प्रचार

(पेज 10 पर जारी)

हमारी चुनौतियाँ, हमारे कार्यभार, हमारा कार्यक्रम

(पेज 9 से आगे)

और उसे ठोस और व्यावहारिक रूप में लोकप्रिय बनाने का काम भी सबसे प्रभावी तरीक़े से करती है। दो, अगर ऐसी स्थिति नहीं है, तो वह उन सीटों को छोड़कर, जहाँ वह अपने उम्मीदवार खड़े कर रही है, अन्य सभी सीटों पर फ़ासीवादी पार्टी को जनता के सबसे ख़तरनाक दुश्मन के तौर पर हराने का नारा देती है। यह नारा वह ***नकारात्मक रूप*** में देती है। यानी, किसी निश्चित पूँजीवादी दल या पूँजीवादी दलों के गठबन्धन को वोट देने का नारा देकर वह अपनी स्वतन्त्र सर्वहारा अवस्थिति का आत्मसमर्पण नहीं करती। वह स्पष्ट तौर पर बताती है कि अन्य सभी पूँजीवादी दल भी सरकार बनाने पर, सम्भवत: कुछ कम रफ़्तार से, कुछ कम ग़ैर-जनवादी तरीक़े से और कुछ अलग रूप में उन्हीं जनविरोधी नवउदारवादी नीतियों को लागू करेंगे जो कि भाजपा की फ़ासीवादी मोदी-शाह सरकार कर रही थी। *लेकिन ऐसी नीतियों का विरोध करने, उनके ख़िलाफ़ आन्दोलन खड़े करने और उनके ख़िलाफ़ व्यापक मेहनतकश जनता को एकजुट करने के लिए भी जो जनवादी स्पेस और जनवादी अधिकार (चाहे वे कितने ही सीमित क्यों न हों) चाहिए और जिन्हें विस्तारित करने के लिए संघर्ष करने की ज़रूरत है, उसके लिए सबसे पहले फ़ासीवादी पार्टी को चुनावों में हराया जाना चाहिए।* यह सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी का काम नहीं है कि वह यह सकारात्मक तौर पर जनता को बताये कि वह 'इण्डिया' गठबन्धन को वोट दे, या बीजू जनता दल को वोट दे, या जगनमोहन रेड्डी की वाईएसआरसीपी को वोट दे, या केसीआर की भारत राष्ट्र समिति को वोट दे। ऐसा कोई क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी क्यों करेगी और इसकी आवश्यकता ही क्यों है? यह जनता स्वयं तय कर सकती है और करती भी रही है। इस नकारात्मक नारे के ज़रिये एक क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी अब तक की नाकामयाबी का आत्मस्वीकार और आत्मालोचना भी करती है कि अब तक वह देशव्यापी विकल्प बनकर क्यों नहीं उभर सकी? ऐसा करके वह इस वस्तुगत स्थिति के बारे में एक वस्तुगत मूल्यांकन भी जनता के बीच पेश करती है जिसके अनुसार जनता की क्रान्तिकारी नेतृत्वकारी शक्तियों को अपने आपको संगठित करने और जनता की शक्तियों को संचित करने के लिए वक़्त, मौके और मोहलत की ज़रूरत है। ***यही ठोस परिस्थिति है और इस ठोस परिस्थिति के ठोस विश्लेषण के आधार पर यही ठोस नतीजा निकलता है।***

इसलिए एक सकारात्मक नारे और नकारात्मक नारे के बीच अन्तर समझना यहाँ बेहद ज़रूरी है। कोई कह सकता है कि इस नकारात्मक नारे का वस्तुगत तौर पर फ़ायदा तो हर क्षेत्र में ग़ैर-भाजपा पूँजीवादी दलों को ही पहुँचेगा और आज की स्थिति में अधिकांश मामलों में 'इण्डिया' गठबन्धन को पहुँचेगा। **बिल्कुल सही बात है।** वस्तुगत तौर पर इस नारे का नतीजा यही होगा। लेकिन एक नकारात्मक नारे के वस्तुगत परिणाम और एक सकारात्मक नारे के राजनीतिक नतीजे एक सर्वहारा संगठन के लिए अलग-अलग होते हैं। मिसाल के तौर पर, पूरी दुनिया में ही जहाँ पहले भी क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों ने धुर दक्षिणपन्थी, फ़ासीवादी, धार्मिक कट्टरपन्थी सरकारों के विरुद्ध, जो उनके लिए तात्कालिक तौर पर घातक शत्रु बन चुकी थीं, अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता को बरक़रार रखते हुए अभियान चलाये, वहाँ *वस्तुगत तौर पर* उसका तात्कालिक फ़ायदा किसी सेण्ट्रिस्ट या उदारपन्थी या सेण्टर-राइट पूँजीवादी दल को ही पहुँचा। और उनकी सरकारें बनने की स्थिति में क्रान्तिकारी ताक़तों को अपने आपको पुनर्गठित व पुनर्संगठित करने में और जनता की शक्तियों को संचित करने के लिए एक मोहलत मिली। ***यही तो इरादा है, यही तो पूरा विचार है।*** फ़र्क़ बस यह है कि सकारात्मक नारा (हमें क्या चाहिए) एक क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी की राजनीतिक स्वतन्त्रता की कीमत पर ही दिया जा सकता है, जबकि नकारात्मक नारा (हमें क्या *नहीं* चाहिए) अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता को बरक़रार रखते हुए दिया जा सकता है। इनमें से पहला फ़ासीवाद के विरुद्ध चुनावी रणकौशल का संशोधनवादी, सुधारवादी, बुर्जुआ उदारवादी संस्करण है, जबकि दूसरा मौजूदा राजनीतिक स्थिति में सर्वहारा रास्ता है।

अब कोई यह कह सकता है कि यही नारा 2019 में क्यों नहीं दिया जाना चाहिए था? पाठकों को याद होगा कि तब 'मज़दूर बिगुल' की तरफ़ से हमने यह राजनीतिक लाइन प्रस्तावित की थी कि जिन सीटों पर क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के, यानी सर्वहारा उम्मीदवार, हैं वहाँ उन्हें वोट देने का नारा दिया जाना चाहिए और बाक़ी सभी सीटों पर 'नोटा' का बटन दबाने का नारा दिया जाना चाहिए। तो फिर 2024 में ये बदलाव क्यों? इसका जवाब हम इस लेख की शुरुआत में दे चुके हैं। **फ़ासीवादी उभार और राज्यसत्ता का आन्तरिक टेकओवर व फ़ासीवादीकरण कोई घटना नहीं है, बल्कि प्रक्रिया है, जो गुणात्मक रूप से भिन्न कई चरणों से गुज़रती है।** यह बात आज के दौर के फ़ासीवाद के ऊपर और भी ज़्यादा लागू होती है जिसकी पहचान ही तेज़ी से हुए उभार, आपवादिक तानाशाहाना क़ानूनों, पूँजीवादी जनवाद के औपचारिक ख़ात्मे और उतने ही द्रुत गति से पतन से नहीं होती, बल्कि लम्बे अवस्थितिबद्ध युद्ध के ज़रिये समाज और राज्यसत्ता में पकड़ और घुसपैठ बनाने, पूँजीवादी जनवाद के खोल को बनाये रखने, राज्यसत्ता के लम्बे आन्तरिक टेकओवर को अंजाम देने और लहरों में सत्ता पर आरोहण से होती है। 2014 से 2019 के दौर में मोदी सरकार द्वारा राज्यसत्ता के फ़ासीवादीकरण और फ़ासीवादी राजनीति के प्रभुत्व को स्थापित करने की प्रक्रिया जिस मंज़िल में थी और 2019 से 2024 के बीच वह जिस मंज़िल में प्रवेश कर चुकी है, उसमें एक महत्वपूर्ण गुणात्मक अन्तर है। इस अन्तर की हमने ऊपर चर्चा की है। **फ़ासीवादी राजनीति और उसके द्वारा समूची राजनीतिक व्यवस्था पर अपने प्रभुत्व को स्थापित करने की प्रक्रिया की एक निर्णायक पहचान यह होती है कि वह न सिर्फ जनता की शक्तियों और उसके आन्दोलनों का पहले से ज़्यादा नग्न तरीक़े से दमन करती है, बल्कि वह पूँजीवादी दायरे के भीतर मौजूद विपक्ष का भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दमन करती है और ठीक इसी के ज़रिये जनता की क्रान्तिकारी शक्तियों के दमन और उत्पीड़न को भी नये स्तर पर ले जाती है।** हिटलर व मुसोलिनी के दौर में यह प्रक्रिया नात्सी व फ़ासीवादी पार्टी के शासन द्वारा सीधे अन्य सभी पार्टियों पर खुले प्रतिबन्ध के रूप में और उन्हें ग़ैर-क़ानूनी बना दिये जाने के रूप में सामने आयी थी। लेकिन आज के दौर में फ़ासीवादी शक्तियाँ *आम तौर पर* ऐसा नहीं करेंगी क्योंकि आज के दौर के फ़ासीवादी उभार की चारित्रिक अभिलाक्षणिकता ही यह है कि वह आम तौर पर बुर्जुआ जनवाद के खोल को बरक़रार रखता है। ऐसे में न तो चुनाव भंग किये जायेंगे, न पूँजीवादी जनवाद को औपचारिक तौर पर भंग किया जायेगा, और न ही अन्य पूँजीवादी दलों पर औपचारिक तौर पर प्रतिबन्ध लगाया जायेगा या उन्हें ग़ैर-क़ानूनी घोषित किया जायेगा। लेकिन राज्यसत्ता के आन्तरिक टेकओवर का निहितार्थ ही यही है कि सरकार में होने पर भाजपा अन्य पूँजीवादी दलों को वित्तीय, संस्थागत और राजनीतिक तौर पर पंगु बना देगी। क्या हम ठीक यही चीज़ अपनी आँखों के सामने घटित होते हुए नहीं देख रहे हैं?

2019 और 2024 में इस गुणात्मक अन्तर को समझना ज़रूरी है। कुछ लोग फिर भी पूछ सकते हैं कि 2019 में ही आपको नहीं पता था कि अन्तत: 5 वर्षों में स्थिति यहाँ तक पहुँच जायेगी? आपने तभी फ़ासीवादी पार्टी को चुनावों में हराने का *नकारात्मक नारा* क्यों नहीं दिया? जवाब यह है कि चुनावों जैसी राजनीतिक प्रक्रिया के लिए तात्कालिक राजनीतिक कार्यक्रम भविष्य की तमाम सम्भावनाओं के बारे में किये जाने वाले पूर्वानुमान या आपकी भविष्यवाणियों के आधार पर नहीं बनाये जाते हैं। वैसे भी भविष्य हमेशा ही एकल सम्भावना को नहीं बल्कि कई सम्भावनाओं के अपने भीतर छिपाये होता है। *2019 में ऐसा कोई भी तात्कालिक कार्यक्रम उस समय की आम राजनीतिक वर्ग स्थिति के आधार पर ही बन सकता था और आज यानी 2024 में भी आज का तात्कालिक राजनीतिक कार्यक्रम आज की आम राजनीतिक वर्ग स्थिति के आधार पर ही बन सकता है और इन दोनों राजनीतिक स्थितियों में एक महत्वपूर्ण गुणात्मक अन्तर है।* उस समय की राजनीतिक परिस्थिति के अनुसार नोटा का नारा बिल्कुल सही था क्योंकि वह उस सिचुएशन के अनुसार, जिसमें अन्य पूँजीवादी दलों के समक्ष कम-से-कम राजनीतिक अर्थों में बराबरी का अवसर था, जनता को उन सीटों को छोड़कर अन्य सभी सीटों पर अपना अविश्वास प्रकट करने का अवसर देता था, जहाँ सर्वहारा उम्मीदवार नहीं थे। आज के समय में बुर्जुआ जनवाद की यह विशिष्ट विशिष्टता भी अन्तर्वस्तु के धरातल पर लुप्तप्राय है, जिसमें अन्य पूँजीवादी दलों के पास प्रतिस्पर्द्धा में होने के कम-से-कम बराबर राजनीतिक अवसर होते हैं। आज के समय में पूँजीवादी जनवाद की एक अन्तरकारी विशेषता मूलत: और मुख्यत: समाप्त होने की प्रक्रिया में है। ***ऐसे में, सही क़दम स्वतन्त्र सर्वहारा राजनीतिक अवस्थिति को खोये बग़ैर यह नकारात्मक नारा देना है कि फ़ासीवादी मोदी-शाह सरकार को हराया जाये।***

अब आखिरी सम्भावित प्रश्न पर आते हैं। कुछ लोग यह पूछ सकते हैं कि अगर (वैसे तो इसकी सम्भावना नगण्य है) क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी को जितने वोट मिलते हैं, उतने ही अन्तर से कोई ग़ैर-फ़ासीवादी पूँजीवादी गठबन्धन फ़ासीवादी भाजपा से उन सीटों पर हार जाता है, जिन पर क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी ने अपने उम्मीदवार खड़े किये हैं, तो? अगर इतनी ही सीटों के अन्तर से कोई ग़ैर-फ़ासीवादी गठबन्धन देश की संसद में बहुमत हासिल नहीं कर पाता है, तो?

वैसे तो यह बहुत अविवेचित किस्म की सम्भावनाओं पर आधारित सवाल है, लेकिन सैद्धान्तिक तौर पर ऐसी सम्भावनाओं पर आधारित सवालों के जवाब देना ज़रूरी है। पहली बात, सर्वहारा वर्ग के लिए सबसे प्राथमिक और प्रधान कार्य होता है *अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता को बरक़रार रखना।* जिन सीटों पर क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी का काम है, वहाँ सर्वहारा वर्ग और आम मेहनतकश जनता के बीच उसका आधार है, वहाँ फासीवाद को सरकार में आने रोकने के लिए दिये जाने वाले किसी नकारात्मक नारे के आधार पर भी अपने उम्मीदवार न खड़े करना, सीधे-सीधे स्वतन्त्र सर्वहारा अवस्थिति का परित्याग करना होगा। इस जोखिम को उठाते हुए भी कि ठीक इसी भागीदारी के कारण उक्त सीटों पर गैर-फ़ासीवादी पूँजीवादी दल या उनका गठबन्धन हार जाता है और ठीक इन्हीं सीटों पर हार के कारण वह केन्द्र में सरकार नहीं बना पाता और फिर से फ़ासीवादी पार्टी की सरकार बन जाती है, सर्वहारा वर्ग इन सीटों पर अपने उम्मीदवार खड़े न करने की ग़लती नहीं कर सकता। *सवाल प्राथमिकताओं और प्रधान अन्तरविरोध का है।* जैसा कि अंग्रेज़ी की उक्ति है, अपने दूरगामी राजनीतिक हितों के लिए, 'यह एक ऐसा जोखिम है, जो हम उठाने के लिए तैयार हैं।' इसीलिए अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता को बचाये रखते हुए सर्वहारा वर्ग को हर वह विकल्प अपनाना चाहिए जो फ़ासीवादी उभार को नुकसान पहुँचा सकता है, उसे तात्कालिक ही सही, लेकिन पीछे की ओर धक्के दे सकता है क्योंकि राजनीतिक जनवाद के अभाव में समाजवादी क्रान्ति के लिए संघर्ष और आम तौर पर जनता के संघर्षों को भी नुकसान पहुँचता है।

लेकिन ये सारी स्थितियाँ बहुत ही अन्य प्रकार की फ़न्तासियों पर आधारित हैं। जीवित लोग जीवित प्रश्नों पर सोचते हैं। ***जब हम ठोस परिस्थितियों के बारे में ठोस रूप में सोचते हुए एक ठोस कार्यक्रम को सूत्रबद्ध करते हैं, तो मौजूदा चुनावों में आम मेहनतकश जनता और सर्वहारा वर्ग का कार्यक्रम स्पष्ट है : जिन सीटों पर क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी का उम्मीदवार है, वहाँ उसे वोट दें और सभी पूँजीवादी दलों की हार को सुनिश्चित करें और अन्य सीटों पर फ़ासीवादी भाजपा की हार को सुनिश्चित करें।*** पहला सर्वहारा वर्ग की किसी क्रान्तिकारी पार्टी के पूँजीवादी चुनावों में रणकौशलात्मक भागीदारी के आधार पर दिया गया सकारात्मक नारा है और दूसरा, उन सीटों के लिए फ़ासीवादी उभार व राज्यसत्ता के फ़ासीवादी टेकओवर के गुणात्मक रूप से नये चरण के लिए दिया गया नकारात्मक नारा है, जो मेहनतकश वर्गों की क्रान्तिकारी शक्ति को वह वक़्त, मौका और मोहलत दे सके कि वह अपनी शक्तियों को संचित कर सके।

●

फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई में क्यों 'इण्डिया' गठबन्धन नहीं हो सकता भाजपा का विकल्प?

(पेज 1 से आगे)

का है जिन्हें बस सत्ता का लालच है और इनकी राजनीति इसी अवसरवादिता तक सीमित है। ख़ैर, कुल मिलाकर लिबरल और प्रगतिशील तबके द्वारा भी लोगों के सामने आज 'इण्डिया' गठबन्धन को ही एकमात्र विकल्प के रूप में पेश किया जा रहा है। लेकिन ज़रा इस गठबन्धन में शामिल पार्टियों के इतिहास और कारनामे पर नज़र डालें तो यह साफ़ हो जाता है कि ये सारी पार्टियाँ भी किसी न किसी पूँजीपति वर्ग की ही नुमाइन्दगी करती हैं। आइये हम एक-एक करके इनके वर्ग चरित्र और इनकी सच्चाई को समझते हैं।

कांग्रेस का इतिहास और उनकी वर्तमान दशा

भारत में कांग्रेस पार्टी मालिकों की वर्ग की नुमाइन्दगी करने वाली सबसे पुरानी पार्टी है। कांग्रेस पार्टी अपने अस्तित्व के संकट से गुज़र रही है क्योंकि मालिकों की लूट को भाजपा आज ज़्यादा बेहतर ढंग से जारी रख सकती है और इसलिए वह देश के पूँजीपति वर्ग के बहुलांश के लिए पसन्दीदा पहला विकल्प नहीं है। आज़ादी के बाद से क़रीब 60-65 साल कांग्रेस ने राज किया, और अपने पूरे शासनकाल में कांग्रेस ने यह ख़्याल रखा कि पूँजीपतियों की ख़ातिरदारी में कोई कमी न रह जाये। पहले जब आज़ादी के ठीक बाद यह वर्ग इतना ताक़तवर नहीं था तब राज्य ने एक बड़े पूँजीपति की भूमिका निभायी। तब देश में 'पब्लिक सेक्टर' की तथाकथित 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' के ज़रिए कांग्रेस ने इस काम को अंजाम दिया था। इसके ज़रिये बड़े आधारभूत व अवरचनागत उद्योगों को सरकार ने अपने हाथों में लिया और देशी पूँजीपतियों को ख़राब गुणवत्ता के उपभोक्ता माल बनाकर बेचने की इजारेदारी के ज़रिये पूँजी संचय करने का मौका दिया। कांग्रेस की सरकार ने अपनी तमाम संरक्षणवादी नीतियों द्वारा इन 'देशी' पूँजीपतियों को विकसित देशों के बड़े पूँजीपतियों से प्रतिस्पर्द्धा से बचाने का काम भी किया, उन्हें फलने-फूलने का पूरा अवसर प्रदान किया तथा जनता को लूटने का मौका दिया। 1980 के दशक के अन्त तक, जब भारत के टाटा-बिड़ला, अम्बानी, हिन्दुजा, गोयनका आदि बड़े पूँजीपति मज़बूत हो चुके थे, मँझोले और छोटे पूँजीपतियों का एक वर्ग पैदा हो चुका था, गाँवों में ग्रामीण पूँजीपति यानी धनी किसानों व कुलक भूस्वामियों का एक वर्ग पनप चुका था, तब जनता की बचत और मेहनत के बूते खड़े किये गये देश के पब्लिक सेक्टर को कांग्रेस की सरकार ने ही 1991 में लायी गयी नयी आर्थिक नीतियों के तहत कौड़ियों के दाम पूँजीवादी घरानों व कम्पनियों को बेचना शुरू किया। भाजपा ने तो आर्थिक संकट के दौर में इन्हीं जनविरोधी नीतियों को बेरोकटोक और तेज़ गति से लागू करने का काम किया है। पहले 1998 से 2004 तक की वाजपेयी सरकार ने और फ़िर 2014 के बाद मोदी सरकार ने इस काम को अंजाम दिया है।

भले ही आज आर्थिक संकट के गहरे होने के कारण कांग्रेस इन धन्नासेठों की पहली पसन्द नहीं है, क्योंकि वह भाजपा और आरएसएस की तरह जनता को बाँटने के लिए एक प्रतिक्रियावादी साम्प्रदायिक सामाजिक आन्दोलन नहीं खड़ा कर सकती जो लोगों को उनके असल मुद्दों से भटकाने का काम करे, लेकिन फिर भी पूँजीपति वर्ग का हित इसे भी ज़िन्दा रखने में है। यही कारण है कि इलेक्टोरल बॉण्ड से मिले चन्दों में भाजपा और तृणमूल कांग्रेस के बाद कांग्रेस को ही सर्वाधिक क़रीब 1300 करोड़ रुपये मिले। यह सच है कि सभी पार्टियों को मिले चन्दे से ज़्यादा अकेले फ़ासीवादी भाजपा को मिला ताकि वह तानाशाहाना तरीक़े से नवउदारवादी मज़दूर-विरोधी व जनविरोधी नीतियों को लागू कर सके। कांग्रेस भी भाजपा के भ्रष्टाचार की आलोचना और उस पर राजनीतिक हमले करने में इस बात का ध्यान रखती है कि वह पूँजीपति वर्ग को नाराज़ न करे। वह बार-बार श्रेय लेने की तरह से याद दिलाती है कि निजीकरण व उदारीकरण की पूँजीपरस्त नीतियों की शुरुआत तो उसी ने की थी! वह बस इतना चाहती है कि लूटने का अवसर सारे पूँजीपतियों को बराबरी से मिले, केवल मोदी के मित्रों को, मसलन, अडानी व अम्बानी आदि को नहीं!

अन्य राष्ट्रीय व क्षेत्रीय विपक्षी पार्टियों की कुण्डली

ऐसा बिल्कुल भी नहीं है कि यदि भाजपा और कांग्रेस को छोड़ दें तो बाक़ी की चुनावबाज़ पार्टियों को आम जनता तथा मेहनतकश-मज़दूरों की चिन्ता सताती हो, और सत्ता में आने के बाद वे जनता के लिए दिलो-जान से काम करने को बेक़रार हों! आप, सपा, बसपा, द्रमुक, अन्नाद्रमुक, जद (यू), जद (सेकु.), तृणमूल कांग्रेस, राजद, शिवसेना आदि भी चुनकर अगर सत्ता में आती हैं, तो ये पार्टियाँ भी जनता की सच्चे मायने में नुमाइन्दगी नहीं कर सकतीं क्योंकि ये भी पूँजीपति वर्ग के ही किसी न किसी हिस्से से मिलने वाले चन्दों व अनुदानों पर चलती हैं और इसलिए पूँजीपति वर्ग के हितों की ही नुमाइन्दगी करती हैं। इनकी पिछली सरकारों का ब्योरा निकालने पर यह बात और साफ़ हो जाती है।

उदाहरण के लिए आम आदमी पार्टी (आप) की बात करें तो यह मँझोले व छोटे पूँजीपतियों, व्यापारियों, ठेकेदारों, बिचौलियों, प्रॉपर्टी डीलरों, ट्रांसपोर्टरों तथा शहरी पढ़े-लिखे नौकरीशुदा मध्य वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। यह दावा करती है कि इसकी कोई विचारधारा नहीं है और यह एक भ्रष्टाचार-मुक्त पूँजीवाद बनाने की लड़ाई लड़ रही है। लेकिन सच्चाई यह है कि 'आप' टुटपुँजिया दक्षिणपन्थी लोकरंजकतावादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करती है, जिसका अर्थ है एक सदाचारी पूँजीवाद का सपना दिखाते हुए सभी वर्गों से तमाम वायदे करना, लेकिन वास्तव में केवल पूँजीपतियों व व्यापारियों से किये गये वायदों को निभाना। भ्रष्टाचार मुक्त पूँजीवाद भी वैसा ही एक हवाई सपना है।

उसी तरह बहुजन समाज पार्टी (बसपा) की बात करें तो यह दलित आबादी के बीच पैदा हुए एक छोटे-से पूँजीपति वर्ग, उच्च व मँझोले नौकरशाह वर्ग, मँझोले व निम्न सरकारी कर्मचारी वर्ग यानी कुल मिलाकर दलित आबादी के बीच पैदा हुए एक पूँजीपति वर्ग व मध्यवर्ग के बीच आधार रखती है और मुख्य तौर पर इसी दलित पूँजीपति वर्ग और उच्च मध्यवर्ग की नुमाइन्दगी करते हुए, आम तौर पर पूँजीपति वर्ग के हितों की ही नुमाइन्दगी करती है। यह दीगर बात है कि वह दलित अस्मिता का इस्तेमाल कर दलित मेहनतकश आबादी को भी गुमराह करती है और उसे दलित पूँजीपति वर्ग का पिछलग्गू बनाये रखने का काम कर उसके वोट बटोरने का प्रयास करती है।

इसके बाद बचती हैं तमाम क्षेत्रीय पार्टियाँ : तृणमूल कांग्रेस, राजद, जदयू, शिवसेना, एनसीपी, सपा इत्यादि। हमने पहले ही बताया है कि ये तमाम चुनावबाज़ पार्टियाँ हैं जो किसी न किसी पूँजीपति वर्ग की सेवा करती है। इलेक्टोरल बॉण्ड से मिली भारी-भरकम रकम में एक हिस्सा इन पार्टियों का भी है। तृणमूल कांग्रेस को तो भाजपा के बाद दूसरे नम्बर पर चन्दा मिला है। ममता बनर्जी की सरकार ने अपने राज्य के क्षेत्रीय पूँजीपतियों की सेवा भी इसलिए खुलकर की है। यही हाल बाक़ी की चुनावबाज़ पूँजीवादी पार्टियों का भी है।

नकली लाल झण्डे वाली पार्टियों का असली रंग

इसके बाद आती हैं नकली लाल झण्डे वाली पार्टियाँ : सीपीआई, सीपीआई (एम) और सीपीआई (एमएल)। कहने को तो इन तीनों पार्टियों के नाम में कम्युनिस्ट लगा है और ये लाल झण्डा लेकर मज़दूरों के हक़ों के लिए लड़ने की बात करती हैं। लेकिन हक़ीक़त यही है कि इन सारी पार्टियों का लाल रंग बहुत पहले ही झड़ चुका है और कुछ का तो शुरू से ही गुलाबी रंग था और अब यह बस संसदमार्गी रास्ता अपनाकर ही क्रान्ति लाने की बात करती हैं। असल मायनों में ये तीनों ही मार्क्सवाद का खोल ओढ़े पूँजीवादी पार्टियाँ ही हैं। ये क्रान्तिकारी मार्ग से बहुत पहले ही समझौता कर संशोधनवाद के रास्ते पर जा चुकी हैं। ये इस पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा पंक्ति का काम करती हैं। अव्वलन तो आज इनमें से अधिकांश फ़ासीवाद को फ़ासीवाद कहने से ही घबराती हैं और फ़ासीवाद को हराने के लिए आज भी "पॉप्युलर फ्रण्ट" की बात करते हैं, जो एक ख़ास समय की विशेष परिस्थितियों में ही आंशिक तौर पर कारगर हो सकता था, आज नहीं। लेकिन अपने विचारधारात्मक दिवालियेपन की वजह से इन्हें यह बात समझ ही नहीं आती। यही कारण है कि आज ये तीनों प्रमुख संशोधनवादी पार्टियाँ 'इण्डिया' गठबन्धन का हिस्सा हैं और फ़ासीवाद को हराने का रास्ता उन्हें कांग्रेस और बाकि चुनावबाज़ पार्टियों का पिछलग्गू बनकर और भाजपा को चुनाव में हराकर नज़र आता है।

लेकिन क्या फ़ासीवाद को सिर्फ़ चुनावी रास्ते से हराया जा सकता है?

जवाब है नहीं! आज अगर कांग्रेस या किसी अन्य पार्टी की सरकार ग़लती से सत्ता में आ भी जाये तो भी फ़ासीवाद की निर्णायक हार नहीं हो सकती। ऐसा वही लोग कहते हैं जो राज्यसत्ता और सरकार में फ़र्क़ नहीं समझते। आज भाजपा और संघ ने देश के हर क्षेत्र, नौकरशाह, पुलिस, सेना, न्यायपालिका, चुनाव आयोग, कॉलेज-विश्वविद्यालय समेत पूरे सरकारी तन्त्र में घुसपैठ कर ली है। यही सारे निकाय मिलकर राज्यसत्ता का निर्माण करते हैं। यानी राज्यसत्ता सरकार की तरह कोई अस्थायी निकाय नहीं होती। यदि इस निकाय पर फ़ासीवादी शक्तियाँ अन्दर से क़ब्ज़ा जमा लें और अन्दर से उसका टेकओवर कर लें तो सिर्फ़ चुनाव में हराकर इनको परास्त नहीं किया जा सकता है।

यही कारण है कि अगर इनकी सरकार सत्ता से चली भी जाये तो वह फ़ासीवाद की निर्णायक हार नहीं होगी। भारत में आज संघ और भाजपा ने यही काम किया है और इस तन्त्र के पोर-पोर में इन्होंने अपने लोगों और प्रतिक्रियावादी विचारों को घुसाने का काम किया है। यह बात इसी साल हैदराबाद में पुलिस द्वारा 'राम के नाम' फ़िल्म की स्क्रीनिंग को रोकने के उदाहरण से समझी जा सकती है। आपको बता दें कि इसी साल जनवरी में तेलंगाना की राजधानी हैदराबाद में 'हैदराबाद सिनेफ़ाइल्स' नामक मंच की ओर से भाजपा और संघ संचालित 1990 की रथ यात्रा की हक़ीक़त को बयान करती आनन्द पटवर्धन की पुरस्कृत फ़िल्म 'राम के नाम' की स्क्रीनिंग रखी गयी थी। इस स्क्रीनिंग को बीच में ही रोककर तेलंगाना पुलिस ने आयोजकों को गिरफ़्तार कर लिया था। इस घटना के कुछ ही समय पहले कांग्रेस ने बड़े-बड़े दावे करते हुए चुनाव जीतकर तेलंगाना में सरकार बनायी थी। इसी तरह कर्नाटक में जीतने से पहले इसी कांग्रेस की सरकार ने वायदा किया था कि वह बजरंग दल पर रोक लगायेगी। लेकिन सत्ता में आते ही कांग्रेस ने इस पर चुप्पी साध ली।

हमे यह समझना होगा कि आज का फ़ासीवाद कई मायनों में जर्मनी और इटली के फ़ासीवाद से अलग है। आज फ़ासीवाद आम तौर पर और आपवादिक स्थितियों को छोड़कर पूँजीवादी लोकतन्त्र के खोल को बनाये रखता है। यहाँ तक कि फ़ासीवादी सरकार भारी अलोकप्रियता के कारण सत्ता से भी कुछ समय के लिए जा सकती है। पूँजीवादी लोकतन्त्र के खोल को बरक़रार रखने से पैदा होने वाले अन्तरविरोधों के कारण आपवादिक मामलों में न्यायपालिका के कुछ फ़ैसले भी इनके विरुद्ध जा सकते हैं। परन्तु इसका मतलब फ़ासीवाद का न होना, कमज़ोर होना या हार जाना नहीं होता। असल में राज्यसत्ता पर क़ब्ज़ा कर फ़ासीवाद दीर्घकालिक संकट से ग्रस्त पूँजीवाद के दौर में इस पूँजीवादी लोकतन्त्र को अन्दर से खा जाता है और खोखला कर देता है। कुछेक फ़ैसलों का इनके ख़िलाफ़ जाना इनके हारने का पैमाना नहीं हो सकता है। वैसे भी इन फ़ैसलों से फ़ासीवाद की दूरगामी सेहत पर कोई विशेष असर नहीं पड़ता। जैसा कि आप देख भी रहे होंगे, सुप्रीम कोर्ट द्वारा इलेक्टोरल बॉण्ड पर आये फ़ैसले के बावजूद न तो भाजपा पर कोई कार्रवाई हुई है और न ही तमाम भ्रष्टाचारी शेल कम्पनियों पर जिन्होंने अपने कुल घोषित मुनाफ़े से ज़्यादा चन्दा दिया है, यानी काले धन को सफ़ेद बनाया है। ऐसे में, इन फ़ैसलों का क्या मतलब रह जाता है?

विकल्प क्या है?

लुब्बेलुबाब यह कि तमाम विपक्षी पूँजीवादी पार्टियाँ भाजपा के फ़ासीवादी शासन के विरुद्ध प्रभावी ढंग से नहीं लड़ सकती हैं। उनके पास अभी न तो पूँजीपति वर्ग के भारी आर्थिक समर्थन की ताक़त है, न उनके पास संघ परिवार जैसा सांगठनिक काडर ढाँचा है और न ही वह विचारधारात्मक आधार है, जो कि भाजपा व संघ परिवार के पास है। साथ ही राज्यसत्ता के तमाम निकायों में घुसकर फ़ासीवादी मोदी सरकार और संघ परिवार ने एक-एक करके सारे विरोधियों को कमज़ोर करने का काम किया है जिसकी बात हम लेख की शुरुआत में ही कर चुके हैं। ये जनता के बीच से कोई जुझारू आन्दोलन खड़ा कर नहीं सकते क्योंकि व्यापक पैमाने पर जनता में उतर जाने की ताक़त इन पूँजीवादी पार्टियों के पास नहीं है। लेकिन भारी अलोकप्रियता और पूँजीवादी जनवाद के खोल को बरक़रार रखने से पैदा होने वाले अन्तरविरोधों के कारण अगर आने वाले लोकसभा चुनावों में जनता के बीच मोदी सरकार ईवीएम में किये जाने वाले हेर-फेर के बावजूद हार जाये और विपक्षी पार्टियों का गठबन्धन 'इण्डिया' जीत भी जाये, तो भाजपा और संघ परिवार की देश के समाज और राजनीति में पकड़ बनी रहेगी और आर्थिक संकट के फलस्वरूप व्यापक निम्न मध्यवर्गीय व टुटपुँजिया आबादी में मौजूद आर्थिक व सामाजिक असुरक्षा का लाभ उठाकर, किसी नक़ली दुश्मन, मसलन, मुसलमानों का भय पैदा करके वह और भी ज़्यादा आक्रामक तरीक़े से फिर से सरकार बनाने तक पहुँचेगी।

यह सच है कि भाजपा की चुनावी हार से फ़ासीवादी उभार को और राज्यसत्ता के फ़ासीवादीकरण के लगातार जारी प्रोजेक्ट को तात्कालिक धक्का पहुँचेगा। यह भी सच है कि इससे जनता की

(पेज 12 पर जारी)

फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई में क्यों 'इण्डिया' गठबन्धन नहीं हो सकता भाजपा का विकल्प?

(पेज 11 से आगे)

क्रान्तिकारी शक्तियों को अपने आपको संगठित करने और सशक्त बनाने के लिए अपेक्षाकृत रूप से एक बेहतर सन्दर्भ मिलेगा। लेकिन इस चुनावी हार (अगर यह होती है!) से यह समझने की आत्मघाती भूल कतई नहीं की जानी चाहिए कि यह फ़ासीवाद की निर्णायक पराजय होगी। राज्यसत्ता और समाज पर फ़ासीवादी शक्तियों की पकड़ बनी रहेगी और आर्थिक मन्दी और टुटपुँजिया वर्गों में आर्थिक असुरक्षा के बरक़रार रहने की सूरत में वह फिर से, पहले से भी ज़्यादा आक्रामक तरीक़े से चुनाव जीतकर सत्ता में पहुँचेगी। फ़ासीवाद का सत्ता पर आरोहण हमारे देश में इसी रूप में हुआ है। पिछले लगभग तीन दशकों का इतिहास इसका गवाह है।

2004 और 2009 के चुनावों में भाजपा के हारने के बाद भी ऐसा शोर मचाया गया था कि फ़ासीवाद परास्त हो चुका है, लेकिन इसके बाद 2014 में भाजपा और ज़्यादा संगठित और मज़बूत होकर सत्ता में पहुँची। इसलिए कांग्रेस, सपा, आप, तृणमूल, शिवसेना, राकांपा, द्रमुक, राजद आदि पार्टियाँ भाजपा व संघ परिवार को निर्णायक रूप से शिकस्त देने का काम नहीं कर सकतीं। **यह काम केवल और केवल जनता कर सकती है, बशर्ते कि वह पूरे देश के पैमाने पर अपनी एक क्रान्तिकारी पार्टी को खड़ा करे, जो किसी भी रूप में पूँजीपति वर्ग के चन्दे व सहयोग पर नहीं बल्कि व्यापक मेहनतकश जनता के बूते चलती हो और जो बेरोज़गारी, महँगाई, भ्रष्टाचार व साम्प्रदायिकता के मुद्दे पर जुझारू जनान्दोलन खड़ा करके फ़ासिस्ट सत्ता को उखाड़ फेंकने का माद्दा रखती हो। आज के दौर में फ़ासीवाद की निर्णायक पराजय केवल समाजवादी क्रान्ति के साथ ही सम्भव है।** केवल इसी के ज़रिये अन्ततः भाजपा व संघ परिवार के फ़ासीवादी प्रोजेक्ट को शिकस्त दी जा सकती है।

वर्तमान चुनावों में जनता को क्या करना चाहिए?

हमारा सकारात्मक नारा और हमारा नकारात्मक नारा

जनता के लिए आज के चुनावों में तात्कालिक कार्यक्रम क्या होना चाहिए? इसका सबसे पहला पहलू यह है कि *जहाँ कहीं मज़दूर पार्टी के सर्वहारा उम्मीदवार, यानी जनता के उम्मीदवार हों, जनता एकजुट होकर उन्हें समर्थन और वोट दे ताकि पूँजीवादी चुनावों व पूँजीवादी विधायिकाओं के क्षेत्र में एक स्वतन्त्र सर्वहारा पक्ष खड़ा किया जा सके और व्यापक मेहनतकश जनता में समूची पूँजीवादी व्यवस्था को बेनक़ाब करते हुए समाजवादी कार्यक्रम का प्रचार किया जा सके।* हम जानते हैं कि कुछेक चुनाव क्षेत्रों को छोड़ दें तो बाक़ी निर्वाचन मण्डलों में ऐसा कोई विकल्प जनता के सामने नहीं है। ऐसे में, आज, जब फ़ासीवादी उभार और राज्यसत्ता का फ़ासीवादीकरण एक नयी मंज़िल में पहुँच चुका है, जब पूँजीवादी दायरों के भीतर भी पूँजीवादी विपक्ष को पंगु बनाकर, दन्त-नखविहीन बनाकर ख़त्म किया जा रहा है (यह 2019 से 2024 के बीच विशेष तौर पर हुआ है), जब पूँजीवादी लोकतन्त्र की इस बुनियादी विशिष्टता को ख़त्म किया जा रहा है, *तो हमें यह समझना होगा कि इसका ख़ामियाज़ा भी अन्त में जनता को ही भुगतना होगा।* पूँजीवादी लोकतन्त्र मज़दूर वर्ग और मेहनतकश आबादी का अन्तिम लक्ष्य नहीं होता है, लेकिन उस अन्तिम लक्ष्य, यानी समाजवाद और मज़दूर राज, तक पहुँचने के लिए वर्ग संघर्ष और क्रान्तिकारी जनान्दोलन को विकसित करने के लिए व्यापक मेहनतकश जनता और मज़दूर वर्ग के लिए जो सबसे उपयुक्त ज़मीन होती है, वह पूँजीवादी लोकतन्त्र ही है, चाहे वह कितने भी सीमित जनवादी अधिकार और सीमित जनवादी स्पेस को मुहैया कराती है। आज के दौर के फ़ासीवाद में, पूँजीवादी लोकतन्त्र के महज़ खोल बचे रहने के साथ भी कुछ अन्तरविरोध पैदा होते हैं और क्रान्तिकारी शक्तियों के लिए युक्तिकौशल के लिए कुछ स्पेस पैदा होता है। उसे बचाना और उसे विस्तारित करना आज सर्वहारा संघर्षों को विकसित करने के लिए तात्कालिक एजेण्डा है।

विशेष तौर पर, 2019 से 2024 के बीच फ़ासीवादी मोदी सरकार द्वारा इस स्पेस को भी समाप्त करने के लिए निर्णायक क़दम उठाये गये हैं, जिसमें सबसे प्रमुख है, समूचे पूँजीवादी विपक्ष को तोड़ देना, उसे पंगु बना देना और उसे निष्प्रभावी बना देना।

ऐसे में, अपने दूरगामी वर्ग संघर्ष के हितों को ध्यान में रखते हुए जनता को यह सुनिश्चित करना होगा कि 2024 के लोकसभा चुनावों में भाजपा को शिकस्त दी जाय। *यह फ़ासीवाद की निर्णायक पराजय नहीं होगी, लेकिन यह फ़ासीवादी शक्तियों को एक तात्कालिक झटका देगी और जनता को अपनी शक्तियों को क्रान्तिकारी नेतृत्व के मातहत संचित और संगठित करने की एक मोहलत, वक़्त और मौका देगी।* इसलिए यह **नकारात्मक नारा** हमारे लिए आज प्रासंगिक है कि भाजपा को हराया जाये। यह कोई **सकारात्मक नारा** नहीं है जो सीधे किसी अन्य पूँजीवादी दल या पूँजीवादी दलों के गठबन्धन को समर्थन देता है (जैसा कि संसदीय वामपन्थी, सुधारवादी और उदारवादी देते हैं), क्योंकि वह सर्वहारा पक्ष की स्वतन्त्रता को गिरवी रखने के समान होगा, वह किसी अन्य पूँजीवादी दल या उनके किसी गठबन्धन के राजनीतिक कार्यक्रम को समर्थन देना होगा।

यह नकारात्मक नारा इस बात को निर्धारित करने के लिए है कि *हमें क्या नहीं चाहिए,* न कि इस बात को निर्धारित करने के लिए कि *हमें क्या चाहिए। लेकिन हमें क्या चाहिए, उसकी तैयारी के लिए वक़्त और मोहलत हासिल करने के लिए पहले आज यह तय करना आवश्यक है कि हमें क्या नहीं चाहिए।* **इसलिए जनता के लिए जो दूसरा अहम कार्यभार है वह है हर जगह भाजपा को हराना। यह किसी अन्य पूँजीवादी दल या उनके किसी गठबन्धन का सकारात्मक समर्थन नहीं है।** स्पष्ट है कि यह एक सामान्य रूप में वांछनीय विकल्प नहीं है, बल्कि ऐसे वांछनीय विकल्प की अनुपस्थिति में चुना गया विकल्प है, जो केवल *तात्कालिक तौर पर* एक मोहलत, मौका और वक़्त जनता को दे सकता है कि वह अपनी क्रान्तिकारी शक्तियों को संचित और संगठित कर सके ताकि विशिष्ट तौर पर फ़ासीवाद के विरुद्ध आम तौर पर समूची पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध क्रान्तिकारी आन्दोलन को खड़ा करने की एक अपेक्षाकृत ज़्यादा उपयुक्त ज़मीन को सुनिश्चित किया जा सके। यह किसी अन्य पूँजीवादी सरकार के विरुद्ध जनता के आन्दोलनों को भविष्य में खड़ा करने के लिए आवश्यक, सीमित ही सही, जनवादी स्पेस को बचाने के लिए आवश्यक है, जो आज के फ़ासीवाद के दौर में पूँजीवादी लोकतन्त्र के खोल को बनाये रखने से पैदा होने वाले अन्तरविरोधों के कारण पैदा होता है। पूँजीवादी लोकतन्त्र के खोल को बरक़रार रखने के साथ भी कुछ अन्तरविरोध आते हैं और जनता को उन अन्तरविरोधों का लाभ उठाना चाहिए। लेकिन अगर पूँजीवादी लोकतन्त्र की *अन्तरकारी विशिष्टता*, यानी, पूँजीवादी विपक्ष समाप्त हो जायेगा, तो कोई भी फ़ासीवादी सरकार जनता द्वारा युक्तिकौशल की इस सम्भावना को भी समाप्त या लुप्तप्राय कर देगी, जो एक पूँजीवादी विपक्ष की मौजूदगी के कारण मौजूद रहती है। यह जनता और उसके आन्दोलनों का और ज़्यादा अप्रतिरोध्य तरीक़े से दमन करने का अवसर फ़ासीवादी सत्ता को देगा।

इसलिए इन चुनावों में जनता के लिए दो कार्यवाइयों के नारे प्रासंगिक हैं : जहाँ कहीं मज़दूर पार्टी के सर्वहारा उम्मीदवार हैं, वहाँ हमें उन्हें जिताने का भरपूर और एकजुट प्रयास करना होगा। और बाक़ी सभी सीटों पर भाजपा की हार को सुनिश्चित करने का नकारात्मक नारा बुलन्द करना होगा। यह आज तात्कालिक तौर पर हमारे लिए सबसे ज़रूरी कार्यभार है।

फ़ासिस्ट प्रोपेगैण्डा फैलाती दंगाई फ़िल्में

(पेज 16 से आगे)

में से एक विष्णु डाण्डिया है जो गोपाल गोयल के व्यापारिक सहयोगियों में से है। **गोपाल गोयल हरियाणा में भाजपा के गठबन्धन वाला नेता है।**

एक्सीडेण्ट ऑर कांस्पिरेसी: गोधरा के निदेशक एम.के. शिवाक्ष को उत्तर प्रदेश सरकार ने 2022 के विधानसभा चुनाव में योगी आदित्यनाथ के लिये प्रचार गीत बनाने का काम सौंपा था। यह फ़िल्म भी सीधे-सीधे साम्प्रदायिक प्रचार करने वाली एक दंगाई फ़िल्म है।

जब कोई सरकार इतने बड़े पैमाने पर झूठे प्रचार पर आधारित प्रोपेगैण्डा फ़िल्मों को प्रश्रय देने लगे, अपने सारे काम-धन्धों को छोड़कर अपनी सारी संस्थाओं का इस्तेमाल किसी फ़िल्म के प्रमोशन में लगा दें तो हमें यह समझने में तनिक भी देर नहीं करनी चाहिए कि यह कोई मनोरंजन के लिए बनायी गयी फ़िल्म नहीं बल्कि एक फ़ासीवादी साम्प्रदायिक रणनीति के तहत बनायी गयी फ़िल्म है जिसका असली मक़सद आम मेहनतकश जनता की वर्ग चेतना को कुन्द करना है। लोगों को एक साम्प्रदायिक भीड़ के रूप में तैयार करना है जिसका इस्तेमाल यह सरकार जब चाहे अपनी फ़ासीवादी राजनीति के लिए कर सकें।

प्रोपेगैण्डा फ़िल्में मोदी सरकार की 'बाँटो और राज करो' की पूरी नीति का हिस्सा है। समाज के फ़ासिस्टीकरण में इन फ़िल्मों की महत्वपूर्ण भूमिका है। आज खुल्लम-खुल्ला ऐसी कला संस्थाओं को तहस-नहस किया जा रहा है जो जनपक्षधर हैं, जो इस सरकार के खिलाफ़ प्रतिरोध की आवाज़ उठाती हैं। जनपक्षधर कविताओं, कहानियों, नाटकों आदि को पाठ्यक्रमों से हटाया जा रहा है। इनके मंचन पर प्रतिबन्ध लगाने का खुला खेल चल रहा है। जनपक्षधर कलाकारों, पत्रकारों, प्रोफेसरों, बुद्धिजीवियों को जेलों में भरा जा रहा है। ये सरकार कला को साम्प्रदायिक रंग में रंगने पर आमादा है।

ऐसे में, जनता का पक्ष चुनने वाले कलाकारों, संस्कृतिकर्मियों और बुद्धिजीवियों को निडर होकर आगे आना होगा और व्यापक मेहनतकश जनता के बीच अपनी कला और विचारों के ज़रिये जागृति लाने का काम करना होगा, उन्हें समाज की सच्चाइयों से अवगत कराना होगा, उन्हें दिखलाना होगा कि उनके दुश्मन कौन हैं और दोस्त कौन हैं। ऐसे कलाकार आगे आ भी रहे हैं, लेकिन उन्हें और बड़ी तादाद में आगे आना होगा। उनकी कला भी अपना सामाजिक उत्तरदायित्व तभी निभा पायेगी और कला के रूप में बची भी तभी रह पायेगी।

आम मेहनतकश जनता का पक्ष क्या हो?

हमारे देश के इतिहास में यह एक अँधेरा का दौर है। फ़ासीवादी मोदी सरकार विनाश का नंगा नाच कर रही है। इसमें कोई शक़ नहीं है कि देश ज्वालामुखी के दहाने पर है। ऐसे में सवाल हमारे सामने भी है कि क्या हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे या "सकारात्मक होने" का राग अलापें और शुतुरमुर्ग की तरह अपना सिर रेत में धँसाकर मोदी सरकार की नंगई से नज़रें चुरा लें? आज समय का यही तकाज़ा है कि जो ज़मीन मौज़ूद है वहीं से मेहनत और लगन के साथ **इन फ़ासिस्ट प्रोपेगैण्डा वाली फ़िल्मों के बरक्स वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि और सही इतिहास बोध का प्रचार-प्रसार करने के लिये वैकल्पिक मीडिया का ताना-बाना खड़ा करना होगा। जनपक्षधर कलाकारों को गाँवों-मोहल्लों, कल-कारखानों, बस्तियों, आदिवासी इलाक़ों में सांस्कृतिक टोलियाँ लेकर जाना होगा। जनपक्षधर फ़िल्में बनानी होंगी, अपने अख़बार निकालने होंगे, पुस्तकालय-वाचनालय खोलने, जनता को सच्चाई बताने वाली फ़िल्में दिखानी होंगी, तथा आम मेहनतकश जनता के बीच वैचारिक सांस्कृतिक रूपान्तरण का काम करना होगा।** सिर्फ़ सोशल मीडिया पर फ़ासिस्टों का विरोध करके काम नहीं चलेगा। हमें इनको सड़कों पर जवाब देना होगा। उनके सभी प्रोपेगैण्डा को लोगों के बीच जाकर जड़ से उखाड़ फेंकने का काम करना होगा।

बेशक आज की परिस्थितियाँ प्रतिकूल हैं। लेकिन इस प्रतिकूल परिस्थिति में भी देश के छात्र-नौजवान और मज़दूर इस फ़ासीवादी शक्ति के सामने डटकर खड़े हैं। **इसका एक छोटा सा उदाहरण 'हैदराबाद सिनेफ़ाइल्स' नामक समूह है। जब 22 जनवरी को राम मन्दिर का पूरा राजनीतिक कार्यक्रम चल रहा था, ऐसे में 'हैदराबाद सिनेफाइल्स' के लोगों ने भाजपा और आरएसएस की धर्म की राजनीति को उजागर करते हुए आनन्द पटवर्धन की फ़िल्म 'राम के नाम' दिखायी।** इन्हें जेल जाना पड़ा। बावज़ूद इसके, ये अभी भी फ़िल्मों के माध्यम से लोगों के बीच मोदी सरकार की फ़ासीवादी नीतियों और उसके द्वारा बनायी गयी प्रोपेगैण्डा फ़िल्मों की असलियत को जनता के सामने लाने के काम में डटे हुए हैं। आज की ज़रूरत यही है कि इन फ़ासिस्टों के ख़िलाफ़ हमें अपनी जुझारू जनएकजुटता क़ायम करनी होगी, अपनी क्रान्तिकारी विरासत पर भरोसा करते हुए अपने जन संगठन खड़े करने होंगे। तभी फ़ासीवादियों का मुकाबला हर जगह किया जा सकता है, चाहे वह राजनीति हो या समाज हो या फिर संस्कृति।

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 19

अध्याय-15 *(पिछले अंक से जारी)*

पूँजी का संचय

• अभिनव

बेशी मूल्य के पूँजी व आमदनी में विभाजन से स्वतन्त्र वे कारक जो पूँजी संचय की दर को निर्धारित करते हैं

हमने अभी तक देखा कि पूँजी संचय की दर को निर्धारित करने वाला औपचारिक कारक वह अनुपात है जिसमें बेशी मूल्य को आय (revenue) यानी पूँजीपति के उपभोग में जाने वाली राशि और पूँजी में तब्दील की जाने वाली राशि यानी पूँजीकृत बेशी मूल्य (capitalized surplus value) में विभाजित किया जाता है। *लेकिन यह विभाजन स्वयं अन्य कारकों से तय होता है।* मसलन, **मुनाफ़े की औसत दर**, जिस पर हम आगे आयेंगे।

लेकिन वे आधारभूत और सारभूत कारक क्या हैं, जिनके आधार पर पूँजी संचय की दर निर्धारित होती है? मार्क्स बताते हैं कि वे आधारभूत कारक वही हैं जो बेशी मूल्य की दर और मात्रा को निर्धारित करते हैं। यानी, *श्रम के शोषण की दर*, यानी कि अतिरिक्त श्रम और आवश्यक श्रम का अनुपात, या बेशी मूल्य और मज़दूरी का अनुपात। यह अनुपात अपने आप में तीन कारकों पर निर्भर करता है: *पहला, कार्यदिवस की लम्बाई; दूसरा, श्रमशक्ति के मूल्य को कम करना; तीसरा, श्रम की सघनता को बढ़ाना।* इसके अलावा, यदि श्रम के शोषण की दर समान रहे, तो भी श्रम की उत्पादकता में वृद्धि पूँजी संचय की दर को बढ़ाती है।

पहली बात, जिसे यहाँ समझना ज़रूरी है वह यह है कि मज़दूरी (यानी 'श्रम की कीमत' या श्रमशक्ति की कीमत) हमेशा श्रमशक्ति के मूल्य के बराबर नहीं होती है। पूँजीपति हमेशा यह कोशिश करते हैं कि मज़दूरी को अधिकतम सम्भव नीचे रखा जाय। मार्क्स लिखते हैं :

> "याद रहे कि बेशी मूल्य की दर सबसे पहले श्रमशक्ति के शोषण की दर पर निर्भर करती है। राजनीतिक अर्थशास्त्र इस बात पर इतना ज़ोर देता है कि अक्सर वह श्रम की उत्पादकता में होने वाली बढ़ोत्तरी के कारण संचय की गति त्वरित होने और मज़दूर के शोषण में होने वाली बढ़ोत्तरी के कारण संचय की गति त्वरित होने को एक ही समझ बैठती है। बेशी मूल्य के उत्पादन पर केन्द्रित अध्यायों में हमने लगातार यह माना था कि मज़दूरी कम-से-कम श्रमशक्ति के मूल्य के बराबर है। लेकिन श्रम की मज़दूरी को इसके मूल्य से जबरन कम करना व्यावहारिक मसलों की गति में इतनी अहम भूमिका निभाता है कि हमें कुछ समय इस परिघटना पर ख़र्च करना ही चाहिए। वास्तव में, यह मज़दूर के उपभोग के लिए आवश्यक निधि को पूँजी के संचय के लिए निधि में तब्दील कर देता है।" (कार्ल मार्क्स। 1990. *पूँजी, खण्ड-1*, पेंगुइन बुक्स, लन्दन, पृ. 747-48, अनुवाद हमारा)

पूँजीपति हमेशा चाहता है कि मज़दूरी को कम-से-कम दरों पर रखा जाय और इसके लिए हर सम्भव प्रयास करता है। मार्क्स दिखलाते हैं कि सत्रहवीं सदी से ही इंग्लैण्ड में उद्योगपति, पूँजीवादी फ़ार्मर व अन्य पूँजीवादी उद्यमी किस प्रकार मज़दूरों की मज़दूरी को इस स्तर पर रखने का प्रयास करते थे, जिस पर मज़दूर मुश्किल से अपने परिवार को ज़िन्दा रख पाते थे। पूँजीपति वर्ग के कई घाघ "बुद्धिजीवी" मज़दूरों के खान-पान को बेहद सस्ता बनाने के तरीक़े बताया करते थे, मसलन, किस प्रकार मज़दूर प्रोटीन व अन्य पोषक तत्वों से रिक्त भोजन, यानी माँस-मछली व अन्य पोषक भोज्य पदार्थों के बिना भी काम करने लायक बना रह सकता है! ज़ाहिर है, यह नुस्खे कभी अमीरज़ादों और धन्नासेठों और उनकी औलादों के लिए नहीं बताये जाते थे। *लेकिन मज़दूरों को उस स्तर और उस रूप में कम-से-कम मज़दूरी पर ज़िन्दा रखना हमेशा पूँजीपतियों का लक्ष्य होता है, जिससे कि वह जब तक ज़िन्दा रहे, पूँजीपति के कारखाने या पूँजीवादी फार्मरों के खेतों में खट सके और उनके लिए बेशी मूल्य पैदा करता रह सके।*

इसके अलावा, यदि मज़दूरी श्रमशक्ति के मूल्य के बराबर भी रहे, तो श्रम की सामाजिक शक्तियों के बूते श्रम की उत्पादकता नियमित रूप से बढ़ती है और यह मज़दूरी-उत्पाद पैदा करने वाले उद्योगों में होने पर श्रम के शोषण की दर और इसलिए बेशी मूल्य की दर को भी बढ़ा सकता है और ऐसा न होने की सूरत में भी यह पूँजी संचय की दर को बढ़ाता है। निश्चित तौर पर, जब भी ऐसा होता है, तो श्रम की उत्पादकता में होने वाली यह बढ़ोत्तरी हमारे सामने पूँजी के योगदान के रूप में नज़र आती है, क्योंकि तकनोलॉजी और मशीनों का मालिक पूँजीपति होता है। *लेकिन वास्तव में, तकनोलॉजी और मशीनों में होने वाली हर उन्नति, हर सुधार होता कैसे है?* **यह श्रम की सामाजिक शक्ति का परिणाम होता है।** यह पूँजीपति वर्ग के प्रतिभावान लोगों की मेहनत का परिणाम नहीं होता। इसमें सामाजिक उत्पादन में श्रम के वर्षों का अनुभव सम्मिलित होता है, जिसका सामान्यीकरण और उसे ठोस रूप में लागू कर तकनोलॉजी को उन्नत करना मानसिक श्रमिक यानी वैज्ञानिक मज़दूर, तकनीशियन आदि करते हैं, जो स्वयं पूँजीपति को अपनी श्रमशक्ति बेचते हैं। *यानी, समूचे मज़दूर वर्ग के सामाजिक श्रम की शक्ति ही तकनोलॉजी और मशीनों की उन्नति के रूप में सामने आती है, लेकिन चूँकि स्वामित्व का अधिकार पूँजीपति वर्ग के पास होता है, इसलिए ऐसा दिखता है कि ये समूची उन्नति पूँजी की देन है और पूँजीपति उसका श्रेय लेता है और उसके ऊपर अपना दावा ठोंकता है।*

बहरहाल, विज्ञान और तकनोलॉजी में होने वाली ऐसी हर उन्नति के साथ श्रम की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी होती है। इस बढ़ोत्तरी के दो परिणाम होते हैं, जिन्हें समझकर हम देख सकते हैं कि वह किस प्रकार पूँजी के संचय को बढ़ाते हैं।

यदि श्रम की उत्पादकता उन उद्योगों में बढ़ती है, जो कि मज़दूरी-उत्पाद पैदा करते हैं, यानी वे वस्तुएँ और सेवाएँ पैदा करते हैं, जिनका उपयोग आम तौर पर मज़दूर वर्ग करता है, तो मज़दूर की श्रमशक्ति का मूल्य घटता है। वजह यह कि अब उन उपभोक्ता वस्तुओं व सेवाओं की टोकरी की कुल कीमत घट जाती है, जिनका इस्तेमाल एक मज़दूर और उसका परिवार करता है। नतीजतन, यह मुमकिन है कि मज़दूर की वास्तविक मज़दूरी में कोई अन्तर न आये, या वह बढ़ भी जाय, लेकिन फिर भी मज़दूर की श्रमशक्ति का मूल्य कम हो जाय। नतीजतन, मज़दूर अपनी श्रमशक्ति के मूल्य के बराबर मूल्य का उत्पादन पहले से कम समय में करेगा और इसलिए आवश्यक श्रमकाल घट जायेगा और यदि कुल कार्यदिवस समान रहा, तो सापेक्षिक तौर पर अतिरिक्त श्रमकाल बढ़ जायेगा। चूँकि कुल श्रमकाल समान है, इसलिए कुल मूल्य तो उतना ही पैदा होगा, लेकिन कुल पैदा होने वाले नये मूल्य में अब मज़दूरी का हिस्सा कम होगा और मुनाफ़े का हिस्सा बढ जायेगा। नतीजतन, बेशी मूल्य की दर और बेशी मूल्य की मात्रा दोनों में ही वृद्धि होगी। हम यह सब पहले ही पढ़ चुके हैं।

अब देखते हैं कि जब अन्य उद्योगों में श्रम की उत्पादकता बढ़ती है, तो क्या होता है। इसका अर्थ यह होता है कि यदि कार्यदिवस की लम्बाई और श्रम की सघनता पहले की ही तरह रहे, तो कुल उतना ही मूल्य उत्पादित हो रहा है, उसका बेशी मूल्य और मज़दूरी के बीच विभाजन भी पहले के ही समान हो रहा है, लेकिन मालों की कुल मात्रा बढ़ रही है और इसलिए बेशी उत्पाद का निरपेक्ष परिमाण भी बढ़ रहा है। *इसका अर्थ क्या हुआ?* पहले जितना मूल्य ही अब पहले से ज़्यादा उत्पादों की मात्रा पर वितरित है और पहले जितना बेशी मूल्य ही पहले से ज़्यादा बेशी उत्पाद की मात्रा पर वितरित है। ज़ाहिर है, इससे उत्पादों की प्रति इकाई कीमत घट जायेगी। पूँजीपति के उपभोग के साधन और साथ ही उत्पादन के साधन भी पहले से सस्ते हो जायेंगे। नतीजतन, पहले जितने पूँजी निवेश में ही पूँजीपति पहले से ज़्यादा मशीनें भी ख़रीद सकता है, पहले से ज़्यादा उपभोग भी कर सकता है और अगर आवश्यकता हुई तो अतिरिक्त श्रमशक्ति को भी रख सकता है। मार्क्स उत्पादकता में आम तौर पर होने वाली बढ़ोत्तरी के असर को बेहद स्पष्टता के साथ समझाते हैं:

> "उत्पादों की समूची मात्रा जिसमें कोई निश्चित मूल्य, और इसीलिए बेशी मूल्य की एक दी गयी मात्रा निहित है, श्रम की उत्पादकता बढ़ने के साथ बढ़ती है। अगर बेशी मूल्य की दर समान भी रहती है...तो बेशी उत्पाद की मात्रा बढ़ती है। अगर (पूँजीपति की) व्यक्तिगत आय और अतिरिक्त पूँजी में इस उत्पाद का विभाजन समान रहता है, तो पूँजीपति का उपभोग भी संचय के लिए निर्धारित फण्ड में किसी कमी के बिना बढ़ सकता है। संचय-निधि का सापेक्षिक परिमाण उपभोग-निधि की कीमत पर बढ़ भी सकता है, क्योंकि मालों का सस्ता होना पूँजीपति को पहले के ही समान आनन्द के सारे साधन मुहैया करा सकता है, या पहले से ज़्यादा आनन्द के साधन भी मुहैया करा सकता है। लेकिन श्रम की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी के साथ हमेशा मज़दूर भी सस्ता होता जाता है, और इसलिए बेशी मूल्य की भी उच्चतर दर पैदा होती है, और यह तब भी हो सकता है जबकि वास्तविक मज़दूरी बढ़ रही हो। वैसे भी वास्तविक मज़दूरी कभी भी श्रम की उत्पादकता के अनुपात में नहीं बढ़ती है। इसलिए परिवर्तनशील पूँजी के रूप में पहले जितना मूल्य ही पहले से ज़्यादा श्रमशक्ति को, और नतीजतन, पहले से ज़्यादा श्रम को सक्रिय कर सकता है। इसी प्रकार, स्थिर पूँजी के रूप में भी पहले जितना ही मूल्य पहले से ज़्यादा उत्पादन के साधनों का, यानी श्रम के पहले से अधिक उपकरणों, पहले से अधिक श्रम की सामग्रियों व सहायक सामग्रियों का रूप ले सकता है। इसलिए यह ज़्यादा उत्पाद पैदा करने वाले अभिकर्ताओं और साथ ही ज़्यादा मूल्य पैदा करने वाले अभिकर्ताओं की आपूर्ति करता है, दूसरे शब्दों में पहले से ज़्यादा श्रम को सोखता है। इसलिए, अगर अतिरिक्त पूँजी का मूल्य पहले जितना ही रहता है या घटता भी है, तो भी पहले से तेज़ पूँजी संचय होता है। न सिर्फ पुनरुत्पादन का पैमाना भौतिक रूप में पहले से बढ़ जाता है, बल्कि बेशी मूल्य का उत्पादन भी अतिरिक्त पूँजी के मूल्य से ज़्यादा तेज़ी से बढ़ता है।" (*वही*, पृ. 752-53, *अनुवाद हमारा*)

इसके अलावा, श्रम की उत्पादकता बढ़ने के साथ पूँजीपति के लिए अपने उत्पादन के साधनों के हिस्सों को बदलना, उनकी मरम्मत करना, कच्चे माल व सहायक मालों की भरपाई करना भी सस्ता हो जाता है क्योंकि ये सारी चीज़ें सस्ती हो जाती हैं। न सिर्फ़ ये चीज़ें सस्ती हो जाती हैं, बल्कि इन चीज़ों की गुणवत्ता और प्रभाविता भी श्रम की उत्पादकता बढ़ने के साथ बढ़ती जाती है। इसलिए वे पलटकर श्रम की उत्पादकता को और भी ज़्यादा बढ़ाती हैं। इसलिए ख़र्च होने वाले उत्पादन के साधन पूर्ण रूप में या आंशिक रूप में पहले से कम ख़र्च पर बदले जा सकते हैं और साथ ही वे उत्पादकता को और भी बढ़ाते हैं, क्योंकि उनकी प्रभाविता भी पहले से बढ़ती जाती है। यह सच है कि इसी प्रक्रिया में पहले से उत्पादन में लगी पूँजी का अवमूल्यन होता है। लेकिन यह अवमूल्यन आम तौर पर पूँजीपति वर्ग के लिए प्रतिस्पर्द्धा की प्रक्रिया में होता है और इसलिए इसकी कीमत भी पूँजीपति श्रमशक्ति के शोषण की दर को बढ़ाकर मज़दूर वर्ग से ही वसूलता है।

इसके अलावा, पूँजीपति वर्ग मज़दूरी बढ़ाये बग़ैर या समान अनुपात में मज़दूरी बढ़ाये बग़ैर कार्यदिवस की लम्बाई को बढ़ाकर और श्रम की सघनता को बढ़ाकर भी बेशी मूल्य की दर और मात्रा, दोनों को ही निरपेक्ष तौर पर बढ़ा सकता है और हर बार मौका मिलने पर ऐसा करता भी है। यह सच है कि यदि पूँजीपति मज़दूरों की संख्या में बढ़ोत्तरी करता है, तो उसे उसी अनुपात में अपने उत्पादन के साधनों में भी वृद्धि करनी होगी, यानी मशीनें और कच्चा माल। लेकिन पूँजीपति बिना मज़दूरों की संख्या बढ़ाये भी कच्चे मालों को बढ़ा सकता है, यानी वह भौतिक सामग्री जो श्रम को सोखती है और माल का रूप लेती है, इस प्रकार पूँजी संचय की दर को भी बढ़ा सकता है। मिसाल के तौर पर, अगर किसी कारखाने में 100 मज़दूर 8 घण्टे प्रतिदिन काम करते हैं, तो वे कुल 800 घण्टे का श्रम दे रहे हैं। यदि पूँजीपति 50 मज़दूर अतिरिक्त रखेगा तो कुल श्रम की मात्रा 1200 घण्टे हो जायेगी और उसे 50 अतिरिक्त मज़दूरों के अनुसार न सिर्फ़ अधिक कच्चा माल ख़रीदना होगा, बल्कि पहले से अधिक श्रम के उपकरण भी ख़रीदने होंगे। इसके लिए, उसे पहले से अधिक पूँजी न सिर्फ़ मज़दूरों की श्रमशक्ति को ख़रीदने व कच्चे माल के लिए लगानी पड़ेगी, यानी न सिर्फ़ उसे पहले से ज़्यादा चल पूँजी लगानी होगी, बल्कि श्रम के उपकरणों, यानी मशीनों आदि पर भी लगानी पड़ेगी, यानी उसे पहले से ज़्यादा अचल पूँजी भी लगानी पड़ेगी। लेकिन यदि वह पहले जितनी मज़दूरी पर ही, या मज़दूरी में समान अनुपात में बढ़ोत्तरी किये बग़ैर ही, मज़दूरों को 8 घण्टे के बजाय 12 घण्टे काम करने को बाध्य कर सके (और पूँजीपति अक्सर ऐसी स्थिति में होता है) तो वह पहले जितनी ही परिवर्तनशील पूँजी में ही और मशीनों पर किये जाने वाले पहले जितने निवेश में ही पहले से ज़्यादा श्रम का शोषण कर सकता है। इससे बस इतना होगा कि उत्पादन में लगी

(पेज 14 पर जारी)

फ़िलिस्तीन मुक्ति संघर्ष और मध्य-पूर्व पर गहराते साम्राज्यवादी युद्ध के बादल

● लता

पिछली 1 अप्रैल को सीरिया की राजधानी दमिश्क में ईरानी दूतावास पर इज़रायल के हमले के बाद मध्य-पूर्व में स्थिति बेहद तनावपूर्ण बनी हुई है। ईरान ने इस हमले के विरुद्ध जवाबी कार्रवाई करने की बात कही थी और 14 अप्रैल उसने इज़रायल पर 300 से अधिक ड्रोन, क्रूज़ मिसाइल व बैलिस्टिक मिसाइल से हमले किये, जिसमें इज़रायल के तीन हवाई सेना ठिकानों को नुकसान पहुँचा। इस प्रत्याशित हमले के बाद विशेषज्ञों का कहना है कि आने वाले समय में क्षेत्र में बढ़ता तनाव किसी क्षेत्रीय साम्राज्यवादी युद्ध का रूप ले सकता है। अन्य किसी भी युद्ध की तुलना में गाज़ा पर जारी इज़रायली हमले और क़ौमी दमन की पृष्ठभूमि में किया गया यह हमला बेहद अधिक महत्त्व रखता है। ईरान ने पहली बार इज़रायल की ज़मीन पर सीधा हमला किया है। वास्तव में, मध्यपूर्व में लम्बे समय बाद किसी देश द्वारा इज़रायल पर सीधे हमला किया गया है। इसके पहले ईरान द्वारा हिज़बुल्ला, हूती और हमास को हथियार और तकनीक देने की वजह से इज़रायल ईरान पर बीच-बीच में हमले करता रहा है। लेकिन यह पहली बार है जब ईरान ने इज़रायल पर सीधा हमला किया है।

1948 से फ़िलिस्तीनियों के साथ हो रहा अन्याय और ऐतिसासिक विश्वासघात पूरे मध्य-पूर्व का नासूर बना हुआ है और पूरी अरब जनता ज़ायनवादी, सेटलर, उपनिवेशवादी इज़रायल से बेइन्तहा नफ़रत करती है। फ़िलिस्तीन में जारी प्रतिरोध युद्ध और मुक्ति संघर्ष के दौरान यदि यह क्षेत्रीय युद्ध का रूप अख़्तियार करता है तो यह बहुत व्यापक हो सकता है। यह अमेरिकी साम्राज्यवाद व आम तौर पर पश्चिमी साम्राज्यवाद के लिए बेहद ख़तरनाक तथा क्षेत्र में इज़रायल के भविष्य के लिए निर्णायक साबित होगा। युद्ध की इस सम्भावना से अमेरिका और पश्चिमी साम्राज्यवाद भी परिचित है। ईरान के साथ रूस-चीन धुरी का समीकरण क्षेत्र में अमेरिकी और पश्चिमी साम्राज्यवाद के भविष्य के लिए घातक हो सकते हैं। इसलिए अमेरिका, जर्मनी, फ़्रांस और ब्रिटेन बेहद सोच-समझकर क़दम उठा रहे हैं। नेतन्याहू के तमाम उकसावे के बावजूद किसी प्रत्यक्ष सैन्य हमले की बात कोई नहीं कर रहा है। यह टिप्पणी लिखे जाने तक इज़रायल ने भी ईरान के कुछ ठिकानों पर जवाबी हमला किया लेकिन यह बहुत सोच-समझकर किया गया है, जिससे कि नेतन्याहू इज़रायल में अपनी इज़्ज़त बचा सके और युद्ध की सम्भावना भी ज़्यादा न बढ़े। लेकिन वस्तुगत तौर पर चीज़ें उसी दिशा में बढ़ें यह ज़रूरी नहीं है, जिस दिशा में नेतन्याहू के नेतृत्व में इज़रायल के ज़ायनवादी शासक चाहते हैं। यह किसी भी वक़्त किसी साम्राज्यवादी युद्ध का स्वरूप ले सकता है।

गाज़ा की वर्तमान परिस्थिति

14 अप्रैल से दक्षिण गाज़ा के शरणार्थी शिविरों में रह रही उत्तर गाज़ा की बड़ी आबादी अपने घरों की ओर लौटने की शुरुआत कर चुकी है। कुछ आबादी अपने घर पहुँच भी गयी है। लेकिन इज़रायली सेना उन्हें लौटने से रोक रही है। रोकने के लिए बन्दूकों, आँसू गोले और टैंकों से उनपर हमले कर रही है। सेना ने कई लोगों को गोली मार दी और इसमें कई घायल भी हुए हैं। लेकिन लोग फिर भी अपने घरों को लौट रहे हैं। पिछले छह महीने से चल रहे भयंकर नरसंहार में सेटलर, ज़ायनवादी, उपनिवेशवादी इज़रायल ने गाज़ा के 34,194 नागरिकों की हत्या की है जिसमें 18,300 बच्चे हैं और 8400 औरतें। घायलों की संख्या 76,371 है। गाज़ा के 8000 लोग लापता हैं। वेस्ट बैंक में अभी तक इज़रायल ने 465 लोगों की हत्या की है जिसमें 118 बच्चे हैं। इज़रायली हमलों में साठ प्रतिशत से अधिक रिहायशी मकान तबाह हो गये हैं, अस्सी प्रतिशत से अधिक व्यवसायिक इमारतें और स्कूल ज़मींदोज़ हो चुके हैं। पैंतीस में से मात्र ग्यारह अस्पताल आधे-अधूरे काम कर रहे हैं। 83 प्रतिशत भूजल स्रोत काम नहीं कर रहे जिसकी वजह से पीने के पानी की भयंकर दिक़्क़त है। 85 प्रतिशत आबादी आन्तरिक विस्थापन झेल रही है और दक्षिण गाज़ा में टेण्टों में रह रही है जहाँ भोजन, पानी और साफ़-सफ़ाई की भयंकर दिक़्क़त है। गाज़ा में भुखमरी से मौतें होनी शुरू हो गयी है। इज़रायल ने सभी सीमाओं पर वाहनों की आवाजाही पर सख़्त प्रतिबन्ध लगाया हुआ है जिसकी वजह से गाज़ा की आधी से अधिक आबादी भुखमरी का शिकार हो रही है। खाद्य सामग्री, दवा व चिकित्सा उपकरणों पर प्रतिबन्ध सेटलर ज़ायनवादी इज़रायल के एथनिक सफ़ाये की घृणित नीति को उजागर कर रही है। इसी मंसूबे को दर्शाते हुए बर्बर इज़रायल ने "वर्ल्ड सेण्ट्रल किचन" के कर्मचारियों को हमले में मार डाला था। अपने इन कुकृत्यों की वजह से दुनिया की आम जनता के बीच इज़रायल के प्रति नफ़रत और घृणा अभूतपूर्व रूप से बढ़ रही है। इतना ही नहीं इज़रायल किसी भी अन्तरराष्ट्रीय नियम का पालन नहीं करता। अस्पतालों, स्कूलों, संयुक्त राष्ट्र आश्रय केन्द्रों, एम्बुलेंसों, मस्जिदों आदि को बिना किसी शर्म के निशाना बनाता है। इन सबके बावजूद गाज़ा की जनता अपने मुक्ति संघर्ष और प्रतिरोध युद्ध को बहादुरी से जारी रखे है।

युद्ध विराम वार्ता और इज़रायल का कायराना हमला

हाल ही में एक कायराना हमले में इज़रायल ने हमास के नेता इस्माइल

(पेज 15 पर जारी)

पूँजी का संचय

(पेज 13 से आगे)

मशीनें पहले से तेज़ गति से ख़र्च होंगी, लेकिन इससे पूँजीपति को कोई नुकसान नहीं होगा क्योंकि जीवित श्रम की यही विशिष्टता होती है कि वह उत्पादन के साधनों के मूल्य को संरक्षित करता है और उन्हें मालों के मूल्य में स्थानान्तरित करता है। मार्क्स लिखते हैं :

> "बस उनका (यानी श्रम के उपकरणों का) ज़्यादा तेज़ी से उपभोग होगा। इस प्रकार श्रमशक्ति को ज़्यादा ख़र्च करके मिलने वाला अतिरिक्त श्रम बेशी उत्पाद और बेशी मूल्य को बढ़ा सकता है, जो कि पूँजी संचय का सार है, वह भी पूँजी के स्थिर हिस्से में उसी अनुपात में बढ़ोत्तरी किये बग़ैर।" (*वही,* पृ. 751, *अनुवाद हमारा*)

उत्खनन वाले उद्योगों में तो यह फ़ायदा और भी ज़्यादा होगा क्योंकि वहाँ कोई कच्चा माल भी बढ़ाने की आवश्यकता नहीं होगी। क्योंकि वहाँ श्रम की विषय-वस्तु या उसका लक्ष्य जिसमें श्रम सोखा जाता है, अतीत के श्रम का उत्पाद नहीं होता, बल्कि प्रकृति द्वारा बिना किसी ख़र्च के मिलता है, यानी वही पदार्थ जिसका उत्खनन किया जा रहा है। यहाँ जो दो तत्व श्रम के उत्पाद यानी माल को पैदा कर रहे हैं, वे प्रकृति और जीवित श्रम ही है और श्रम को ज़्यादा देर तक खपाकर या उसकी सघनता को बढ़ाकर (यानी, एक घण्टे में औसतन ज़्यादा श्रम मज़दूर से निकलवाकर) बिना कोई अतिरिक्त निवेश किये बेशी उत्पाद और बेशी मूल्य दोनों को ही बढ़ाया जा सकता है। मार्क्स कहते हैं : "श्रमशक्ति के लचीलेपन की बदौलत स्थिर पूँजी के आकार में कोई बढ़ोत्तरी किये बिना ही संचय के क्षेत्र को विस्तारित कर दिया गया है।" (*वही,* पृ. 752, *अनुवाद हमारा*)

खेती में ज़मीन की मात्रा को बढ़ाना सम्भव न हो, तो भी श्रमशक्ति को ज़्यादा ख़र्च करके, बेशी उत्पाद और बेशी मूल्य को बिना उत्पादन के साधनों में वृद्धि किये बिना बढ़ाया जा सकता है। यहाँ भी केवल मनुष्य के श्रम और प्रकृति की अन्तर्क्रिया से, श्रम के उपकरणों में वृद्धि किये बिना संचय की दर और मात्रा दोनों को ही बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार, मार्क्स निम्न सटीक नतीजे पर पहुँचते हैं :

> "इसलिए हम इस आम नतीजे पर पहुँचते हैं: समृद्धि के दो प्राथमिक सर्जकों, यानी श्रमशक्ति और प्रकृति, को अपने में सम्मिलित करके, पूँजी अपना विस्तार करने की एक ऐसी शक्ति अर्जित कर लेती है, जो इसे स्वयं अपनी मात्रा द्वारा, या पहले से उत्पादित उन उत्पादन के साधनों के मूल्य और मात्रा के द्वारा, जिसके रूप में पूँजी अस्तित्वमान होती है, प्रतीतिगत रूप में तय की गयी सीमा से आगे संचय के अपने तत्वों को संवर्धित करने की अनुमति देती है।" (*वही,* पृ. 752, *अनुवाद हमारा*)

इस प्रकार, यदि बेशी मूल्य की दर में बढ़ोत्तरी होती है, तो भी पूँजी संचय की दर और मात्रा दोनों बढ़ती है और यदि बेशी मूल्य की दर में बढ़ोत्तरी न भी हो (यानी मज़दूरी-उत्पाद पैदा करने वाले उद्योगों में उत्पादकता में वृद्धि न हो, श्रमशक्ति के मूल्य में गिरावट न आये और श्रमशक्ति के शोषण की दर समान रहे, या कार्यदिवस की लम्बाई और श्रम की सघनता समान रहे) तो भी श्रम की उत्पादकता की वृद्धि के ज़रिये बेशी मूल्य की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है। यह इस कारक पर निर्भर करता है : श्रमशक्ति की मात्रा में बढ़ोत्तरी। निश्चय ही, इसके साथ पूँजी निवेश में भी बढ़ोत्तरी होगी। मार्क्स लिखते हैं :

> "लगातार जारी संचय के साथ पूँजी जितनी बढ़ती है उतना ही उस मूल्य का कुल योग भी बढ़ता है जो उपभोग निधि और संचय निधि में विभाजित होता है। इसलिए पूँजीपति एक साथ ज़्यादा सुखप्रद जीवन भी जी सकता है, और साथ ही ज़्यादा 'त्याग' भी कर सकता है। और अन्त में, निवेश की गयी पूँजी की मात्रा के साथ उत्पादन का पैमाना जितना विस्तारित होता है, उसकी प्रेरक शक्तियों की विस्तार की क्षमता भी उतनी बढ़ती जाती है।" (*वही,* पृ. 757, *अनुवाद हमारा*)

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि पूँजी कोई पूर्वनिर्धारित मात्रा नहीं होती है, बल्कि सामाजिक समृद्धि या सम्पदा का एक हिस्सा होती है, जो कि लचीली होती है। यह बेशी मूल्य के उपभोग-निधि और संचय-निधि में बँटवारे के अनुपात के बदलने के साथ बदलती है। साथ ही, हम यह भी समझ चुके हैं कि जो पूँजी निवेशित की जाती है, उसमें भी समाहित श्रमशक्ति, विज्ञान (जो कि श्रम की सामाजिक शक्तियों का ही उत्पाद होता है) और सभी प्राकृतिक संसाधन (जो बिना मानवीय श्रम के प्रकृति द्वारा बिना किसी ख़र्च उपलब्ध कराये जाते हैं) ऐसी लचीली शक्तियाँ हैं, जो पूँजी को अपनी ही मात्रा द्वारा तय सीमाओं का, निश्चित हद तक, अतिक्रमण करने की आज़ादी देते हैं।

पूँजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र ने हमेशा यह तस्वीर पेश की है, मानो पूँजी एक फिक्स्ड मात्रा है, उसकी एक तय प्रभाविता/कुशलता है और उसका अतिक्रमण सम्भव नहीं है। इस अवैज्ञानिक विचार के आधार पर उत्पादन में होने वाली आकस्मिक बढ़ोत्तरियों और उसके आकस्मिक तौर पर सिकुड़ जाने को नहीं समझा जा सकता है। लेकिन समूची पूँजी की मात्रा को एक सख़्ती से निर्धारित मात्रा या परिमाण के रूप में चिह्नित करने का विचारधारात्मक लक्ष्य यह था कि मज़दूरी हेतु तय पूँजी, यानी परिवर्तनशील पूँजी और उसके भौतिक तत्वों, यानी मज़दूरों के उपभोग की वस्तुओं और सेवाओं को भी एक सख़्ती से तय और सीमित मात्रा के रूप में पेश किया जाय। यानी पूँजीपति जिस चीज़ को "लेबर फण्ड" या "श्रम निधि" बोलते हैं, उसे भी किसी ऐसी मात्रा के रूप में पेश किया जाता है, जिस पर कुछ प्राकृतिक सीमाएँ हों, जिनका अतिक्रमण न किया जा सकता हो। मार्क्स इस विचारधारात्मक नज़रिये की असलियत को खोलते हुए लिखते हैं :

> "सामाजिक सम्पदा के एक हिस्से को, जो कि स्थिर पूँजी का काम करने वाला है या भौतिक रूप में इसी बात को कहें, जो उत्पदन के साधनों का काम करने वाला है, गतिमान करने के लिए जीवित श्रम की एक निश्चित मात्रा की आवश्यकता होती है। यह मात्रा तकनोलॉजी द्वारा तय होती है। लेकिन मज़दूरों की जो संख्या श्रमशक्ति के इस परिमाण को तरल *(गतिमान-ले.)* स्थिति में रखने के लिए आवश्यक है, वह तय नहीं होती, क्योंकि वह वैयक्तिक श्रमशक्ति के शोषण की दर के साथ बदलती रहती है। न ही इस श्रमशक्ति की कीमत तय होती है, बस इसकी न्यूनतम सीमा तय होती है, जो स्वयं काफ़ी लचीली होती है। जिन तथ्यों पर यह कठमुल्ला विचार आधारित है, वे ये हैं: एक ओर मज़दूर को सामाजिक सम्पदा के ग़ैर-मज़दूर *(यानी पूँजीपति- ले.)* के लिए आनन्द के साधनों और उत्पादन के साधनों में विभाजन में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं होता। दूसरी ओर, केवल अनुकूल और आपवादिक मामलों में ही वह तथाकथित 'लेबर फण्ड' को अमीरों की 'आय' की कीमत पर बढ़ा सकता है।" (*वही,* पृ. 759-60, *अनुवाद हमारा*)

इस कठमुल्ला "तर्क" को साबित करने के लिए बुर्जुआ वर्ग के अर्थशास्त्री एक सस्ती तरक़ीब का इस्तेमाल करते हैं। वे पहले किसी देश के सभी मज़दूरों की मज़दूरी को जोड़ते हैं, जिससे देश का 'मज़दूरी-बिल' तैयार होता है, फिर उसे एक नियत व अपरिवर्तनीय मात्रा घोषित कर देते हैं और उसके बाद उसे मज़दूरों की कुल संख्या से भाग देकर प्रति मज़दूर औसत मज़दूरी निकाल लेते हैं और उसे मज़दूरी की अपरिवर्तनीय सीमा घोषित कर दिया जाता है! यह किस प्रकार की बाज़ीगरी है, आप स्वयं देख सकते हैं। मार्क्स इसकी खिल्ली उड़ाते हैं और बताते हैं कि किसी देश की समूची सम्पदा स्वयं कोई स्थिर मात्रा नहीं है, उसका वह हिस्सा जो पूँजी के रूप में सक्रिय होता है, वह भी कोई स्थिर मात्रा नहीं है। मज़दूरों की मज़दूरी को बढ़ाने की माँग को ग़लत ठहराने और मुनाफ़े को पूँजीपति के 'त्याग और संयम' का परिणाम बताने के लिए ही यह विचारधारात्मक गल्पकथाएँ रची जाती हैं।

यहाँ आकर पूँजी के संचय पर मार्क्स की चर्चा समाप्त होती है। इसके बाद वे पूँजीवादी संचय के आम नियम (General Law of Capitalist Accumulation) की चर्चा पर आते हैं। **अगले अध्याय में हम इसी पर चर्चा करेंगे।**

(अगले अंक में जारी)

फ़िलिस्तीन मुक्ति संघर्ष और मध्य-पूर्व पर गहराते साम्राज्यवादी युद्ध के बादल

(पेज 14 से आगे)

हनिये के तीन बेटों और पोते-पोतियों को निशाना बनाया। इस हमले का भी मक़सद साफ़ है। ज़ायनवादी इज़राइल गाज़ा में अपनी हार को देखते हुए युद्ध विराम वार्ता में अपनी शर्तें मनवाने के लिए बौखलाया हुआ है। वहीं इज़रायली अख़बार *येदियोत अहरोनोत* के अनुसार फ़िलिस्तीन मुक्ति योद्धाओं ने गाज़ा के ख़ान यूनिस पर दोबारा नियन्त्रण हासिल कर लिया है। इज़रायली सेना को साफ़ समझ में आ रहा है कि वे किसी भी सूरत में गाज़ा में स्थाई तौर पर नहीं रह सकते हैं। अभी तक के इज़रायली हमले की कहानी के दो ही पहलू हैं : फ़िलस्तीनी मुक्ति योद्धाओं के हाथों इज़रायल की कायर सेना की लगातार हार और इस हार की बौखलाहट में गाज़ा के आम नागरिकों का इज़रायल द्वारा क़त्लेआम। इनकी हार का एक सबूत यह भी है कि इज़रायली सेना के बर्बर दमन के बावजूद गाज़ा के लोगों ने उत्तर गाज़ा में लौटना शुरू कर दिया है। इज़रायली सेना के अधिकारियों का लगातार बयान आ रहा है कि हमास को निकट भविष्य में हराना मुश्किल है। इज़रायल चाहे जितने बच्चों का ख़ून बहा ले, औरतों और बुज़ुर्गों को मौत के घाट उतार दे, हमास से युद्ध विराम वार्ता में अपनी शर्तें नहीं मनवा पायेगा। गाज़ा की जनता भी आर या पार की लड़ाई के लिए कमर कसे है। गाज़ा और वेस्ट बैंक में मुक्तियोद्धाओं का बहादुराना संघर्ष गाज़ा और समूचे फ़िलस्तीन की ताक़त है। ये मुक्तियोद्धा लगातार अत्याधुनिक हथियारों से लैस ज़ायनवादी सेटलर उपनिवेशवादी सेना को धूल चटा रहे हैं।

ईरान को उकसावा और मध्य-पूर्व में तनाव

लम्बे समय से नेतनयाहू सरकार इस युद्ध को व्यापक बनाने के लिए हिज़बुल्ला और ईरान को उकसा रही है, ताकि अमेरिका को इसमें सीधे शामिल किया जा सके। लेकिन अमेरिकी साम्राज्यवादी ऐसा कतई नहीं चाहते क्योंकि इराक़ और अफ़ग़ानिस्तान में पिटकर वे अपना हश्र देख चुके हैं। अमेरिकी राष्ट्रपति बाइडेन आगामी चुनावों में हार के डर से भी ऐसा करने से कतरा रहा है। अक्टूबर में गाज़ा के ख़िलाफ़ अपने हमले की शुरुतात करते हुए इज़रायली सरकार ने हमास को जड़-मूल से समाप्त करने की घोषणा की थी। लेकिन गाज़ा और वेस्ट बैंक में फ़िलिस्तीनी प्रतिरोध युद्ध और मुक्ति संघर्ष को देखते नेतन्याहू को अब हार साफ़ नज़र आ रही है। इसलिए अपनी बौखलाहट में गाज़ा और वेस्ट बैंक के मासूम बच्चों, महिलाओं और बुज़ुर्गों को हमले का शिकार बना रहा है। अपने दावों के बीच नेतन्याहू सरकार इस क़दर फँस गयी है कि युद्ध जारी रखना उसकी मजबूरी और ज़रूरत दोनों है।

2006 में हिज़बुल्ला के हाथों मिली शर्मनाक शिकस्त इज़रायल दुहराना नहीं चाहता। विश्व हथियार बाज़ार में अपने हथियारों व ख़ुफ़िया तन्त्रों की शक्ति, प्रभाविता और आधुनिकता की साख बनाये रखने के लिए और सेटलर इज़रायली आबादी को अचूक सुरक्षा की गारण्टी के तले सुरक्षा का अहसास कराने के लिए कम से कम शर्मनाक हार से बचना ज़रूरी है। यह इसलिए भी ज़रूरी है क्योंकि नेतन्याहू सरकार नाक तक भ्रष्टाचार में डूबी है। इससे नेतन्याहू का पूरा राजनीतिक भविष्य दाँव पर लगा हुआ था। युद्ध ने फिलहाल इस स्थिति को टाल दिया है। यदि युद्ध में हार हुई जो कि साफ़ दिख रहा है तो ऐसी स्थिति में नेतन्याहू को भ्रष्टाचार के मुक़दमे का सामना तो करना ही पड़ेगा साथ ही युद्धकाल के कुप्रबन्धन के आरोपों का भी सामना करना होगा। अभी भी इज़रायल में बन्धकों को वापस लाने और युद्ध को समाप्त करने के लिए बड़े प्रदर्शन हो रहे हैं। प्रदर्शन में इज़रायली लोग अमेरिका से गुहार कर रहे हैं कि वह नेतन्याहू से इज़रायलियों को बचाये! हमने पहले भी लिखा है कि इज़रायल की बहुत बड़ी आबादी फ़िलिस्तीन के सवाल पर नर्म या गर्म नस्लवादी कट्टरपन्थ की समर्थक है और अरब जनता और विशेषकर फ़िलिस्तीनी जनता के प्रति घोर नस्लवादी नफ़रत से भरी हुई है।

यह सेटलर उपनिवेशवादी आबादी युद्ध विराम की माँग बन्धकों को वापस लाने के लिए कर रही है। उनका गाज़ा में चल रहे नरसंहार से कोई लेना-देना नहीं है। उन्हें भी दिख रहा है कि हमास पर शर्तें लादना मुश्किल है और युद्ध के ज़रिये बन्धकों को वापस लाना उससे ज़्यादा मुश्किल क्योंकि अगर ऐसा सम्भव होता तो छह महीने के युद्ध काल में कबका हो गया होता। इज़रायलियों को भी दिख रहा है कि हमास को हरा पाना मुश्किल है और बौखलाहट में नेतन्याहू सरकार जो औरतों और बच्चों को निशाना बना रही है इससे बन्धकों को छुड़ाना और कठिन होता जा रहा है। इज़रायल की एक बेहद छोटी आबादी शान्ति चाहती है लेकिन यह आबादी इज़राइल में फैले भयंकर नस्लवादी-ज़ायनवादी घटाटोप में किसी तरह की आम राजनीतिक राय बना पाने में नाकाफ़ी है।

वहीं गाज़ा में ज़मीनी युद्ध में इज़रायल की भयंकर हार हो रही है। इज़रायल में मृत, घायल और हताहत सैनिकों की संख्या रोज़ाना बढ़ती जा रही है। स्वतन्त्र रिपोर्टों के अनुसार, हताहत इज़रायली सैनिकों की वास्तविक संख्या 12,000 से ऊपर है। इज़रायली सेना ने ही माना है कि उसके करीब कुल 604 सैनिक मारे जा चुके हैं जिसमें से गाज़ा पर ज़मीनी हमले में ही करीब 300 इज़रायली सैनिक मारे जा चुके हैं, लेकिन निष्पक्ष प्रेक्षकों के अनुसार यह संख्या 2000 के ऊपर हो सकती है। अकेले हिज़बुल्ला का दावा है कि अब तक उन्होंने 2000 इज़रायली सैनिकों को मार गिराया है।

16 जनवरी को इज़रायल को अपने सेना की एक पूरी डिविजन गाज़ा से बुलाकर वेस्ट बैंक में लगानी पड़ी। इसके पहले, उसकी कुलीन व बेहद प्रशिक्षित गोलानी ब्रिगेड भी गाज़ा में पिटकर भाग चुकी थी। आधुनिक हथियारों का ख़ौफ़ ज़ायनवादी इज़रायल मध्य-पूर्व में पैदा करना चाहता है। लेकिन इसके उलट हर जगह उसकी पिटाई हो रही है। लठैत की उसकी छवि पर यह बड़ा धब्बा है। लेबनान सीमा से लेकर गाज़ा व वेस्ट बैंक के सेटलर इलाक़ों में इज़रायलियों की मौत हो रही है, लाल सागर में इज़रायल और इज़रायल समर्थक जहाज़ों पर हूती विद्रोही लगातार हमला कर रहे हैं। वहीं इज़रायल के भीतर युद्ध विराम और बन्धकों की वापसी की माँग तेज़ हो रही है। इस स्थिति में नेतन्याहू और आक्रामक होता जा रहा है, जो कि उसकी हताशा का ही नतीजा है।

इसीलिए नेतन्याहू गाज़ा में अपनी हार को इज़्ज़त बचाने लायक़ समझौते तक पहुँचने के लिए युद्ध में अमेरिका और अन्य पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों को शामिल करना चाहता है। लगातार ईरान को उकसाने के पीछे यही वजह है। मध्य-पूर्व में युद्ध के तनाव को व्यापक करते हुए ईरान के ज़रिये रूस-चीन धुरी और अमेरिका समेत इज़रायल समर्थक पश्चिमी देशों को युद्ध में घसीटने की योजना इज़रायल की है। इस उद्देश्य से ही वह लगातार लेबनान, यमन और ईरान पर हमला कर रहा है। 1 अप्रैल को एक बड़े हमले में इज़रायल ने दमिश्क में ईरान के दूतावास पर हमला किया। इस हमले के बाद मध्य-पूर्व में किसी बड़े युद्ध की सम्भावन कुछ गहरी हुई है। ईरान ने भी इज़रायल को माकूल जवाब देने की घोषणा की और 14 अप्रैल को इज़रायल पर 300 से अधिक मिसाइल ड्रोन हमले किये। इसके बाद इज़रायल ने भी कुछ दिखावटी हमले किये।

इस हमले के बाद मध्य-पूर्व में स्थिति बेहद गम्भीर हो गयी है। जर्मनी, ब्रिटेन, फ़्रांस से लेकर अमेरिका ने ईरान की निन्दा की और मध्य-पूर्व में युद्ध तनाव को तीव्र करने के लिए ज़िम्मेदार ठहराया है। हालाँकि इनमें से किसी भी देश ने इज़रायल के लगातार उकसावे वाली गतिविधियों की कभी निन्दा नहीं की है ना ही दमिश्क में ईरानी दूतावास पर हमले को ग़लत ठहराया। हमले के नर्म चरित्र को देख कर कहा जा सकता है कि यह ईरान की ओर से चेतावनी हमला है। ईरान ने स्पष्ट भी कर दिया कि उसका मिसाइल हमला मात्र चेतावनी तक ही है। इज़रायल द्वारा इस हमले की जवाबी कार्रवाई से युद्ध की अग़ली मंज़िल तय होगी।

फ़िलिस्तीन और फ़िलिस्तीन समर्थक देशों के ख़िलाफ़ लगातार ज़हर उगलने वाले नेतन्याहू ने अभी तक कोई प्रतिक्रिया नहीं दी है। इज़रायल में युद्ध मन्त्रिमण्डल की बैठक के दौरान बस एक बयान आया कि समय आने पर ईरान से हिसाब चुकता किया जायेगा। इज़रायल करे तो क्या करे? इसकी सारी शक्ति अमेरिका और पश्चिमी साम्रज्यवादी देशों के बूते है। यह पश्चिमी साम्राज्यवाद की एक सेटलर उपनिवेशवादी चौकी ही है, जिसे पश्चिमी साम्राज्यवाद ने मध्यपूर्व में अपने हितों की देखरेख के लिए बनाया है। अपने पर बन आये तो इससे बच्चों वाला पटाखा भी न जले। इज़रायल जानता है कि बिना अमेरिका, फ़्रांस, जर्मनी और ब्रिटेन के समर्थन के वह ईरान से टक्कर नहीं ले सकता। ईरान यानी ईरान के साथ खड़े रूस-चीन धुरी से लड़ना तो दूर की बात है, अगर अभी पश्चिमी साम्राज्यवाद अपना समर्थन वापस ले ले तो यह एक घण्टे भी फ़िलिस्तीनी प्रतिरोध और मुक्ति युद्ध के आगे टिक नहीं सकेगा।

ऊपर बताये गये कारणों के चलते अमेरिका की बाइडेन सरकार ईरान हमले के बाद किसी क्षेत्रीय युद्ध में नहीं शामिल होना चाहती है। बाइडेन ने नेतन्याहू को जवाबी कार्रवाई करने से साफ़ मना भी कर दिया था जिसके बावजूद अमेरिका की इस बिगड़ी औलाद ने ईरान पर कुछ दिखावटी हमले किये हैं। अमेरिका किसी भी कीमत पर ऐसे किसी युद्ध में उलझना नहीं चाहता है।

साम्राज्यवादी युद्ध और जनता

लेनिन ने लिखा है साम्राज्यवाद का अर्थ है युद्ध। साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच लाभप्रद निवेश के अवसरों, सस्ते संसाधनों व श्रमशक्ति और बाज़ार को लेकर अन्तर्विरोध गहराते रहते हैं जो समय-समय पर युद्ध के रूप में फूट पड़ते हैं। रूस-यूक्रेन युद्ध, सीरिया, यमन, अफ़ग़ानिस्तान, इराक़ आदि में युद्ध इसके कुछ उदाहरण हैं। मध्य-पूर्व अपने पैट्रोलियम भण्डारों की वजह से लम्बे समय से साम्राज्यवादी युद्धों की मार झेल रहा है। अमेरिका समेत ब्रिटेन, फ़्रांस, जर्मनी जैसे पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों के हितों की सुरक्षा के लिए इज़रायल को मध्य पूर्व में लठैत की तरह स्थापित किया गया था। यह कोई देश नहीं बल्कि इन साम्राज्यवादी देशों का मध्य-पूर्व में मिलिटरी चेक-पोस्ट है, एक सेटलर औपनिवेशिक परियोजना है जिसका मक़सद है मध्य पूर्व में गुण्डागर्दी के दम पर अमेरिका, ब्रिटेन, फ़्रांस, जर्मनी जैसे अन्य पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों के हितों की रक्षा और उनका इस क्षेत्र में दबदबा बनाये रखना। इस विषय पर हम नियमित लिखते रहे हैं। पाठक 'मज़दूर बिगुल' के पिछले अंकों में उन्हें पढ़ सकते हैं।

यहाँ हम बस यही दुहराना चाहेंगे कि गाज़ा का इज़रायली ज़ायनवादी उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष केवल मध्य-पूर्व का क्षेत्रीय मसला नहीं है। फ़िलिस्तीनी जनता का प्रतिरोध-युद्ध और मुक्ति संघर्ष आज विश्व राजनीति में साम्राज्यवादी अन्तर्विरोधों की सबसे अहम गाँठों में से एक बन गया है और विश्व में साम्राज्यवाद की क़ब्र खोदने में अपनी अहम भूमिका निभा सकता है। साम्राज्यवादी और साम्राज्यवाद समर्थक देशों की जनता अपने-अपने हुक्मरानों के ख़िलाफ़ और गाज़ा के प्रतिरोध संघर्ष के समर्थन में भारी संख्या में सड़कों पर उतर रही है। गाज़ा और वेस्ट बैंक में मासूम बच्चों, महिलाओं और बुज़ुर्गों का क़त्लेआम करने वाले इज़रायल को पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों का खुला समर्थन विश्व में साम्राज्यवाद को भी बेनक़ाब कर रहा है। पिछले 6 महीने से जारी नरसंहार को अब इज़रायल के "आत्मरक्षा" के तर्क से छुपाया नहीं जा सकता। वैसे कभी भी कोई उपनिवेशवादी शक्ति अपनी आत्मरक्षा का तर्क नहीं दे सकती। वह यदि किसी क़ौम की ज़मीन पर क़ब्ज़ा करेगी तो उसे हमलों के लिए तैयार रहना चाहिए। उसे आत्मरक्षा का कोई अधिकार नहीं होता।

एक बात और। यह टकराव मध्य-पूर्व में इज़रायल के अस्तित्व के लिए निर्णायक साबित होगा। इज़रायल को मध्य-पूर्व में अमेरिकी और पश्चिमी साम्राज्यवाद ने अपने हितों के लिए स्थापित किया है। अगर फ़ायदे की जगह अमेरिका, जर्मनी, फ़्रांस और ब्रिटेन के लिए यह सौदा महँगा साबित होगा तो वे इज़रायल के सिर से हाथ खींच भी सकते हैं, हालाँकि अभी तत्काल ऐसा होने की सम्भावना कम ही है। लेकिन वे उसे नियन्त्रित करने या वहाँ सत्ता परिवर्तन करवाने के क़दम ज़रूर उठा सकते हैं। यह तो स्पष्ट ही हो गया है कि ये साम्राज्यवादी देश किसी बड़े युद्ध में उलझाना नहीं चाहते हैं।

मध्य-पूर्व में यदि साम्राज्यवादी युद्ध की स्थिति गहराती है तो यह साम्राज्यवाद के लिए एक नाज़ुक स्थिति पैदा कर सकता है। फ़िलिस्तीन लम्बे समय से पूरे मध्य-पूर्व में साम्राज्यवादी अन्तरविरोधों की सबसे बड़ी गाँठ बना हुआ है। लेबनान, जॉर्डन, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, बहरीन आदि देशों की जनता अपने समझौतापरस्त हुक्मरानों के ख़िलाफ़ है। साम्राज्यवादी युद्ध के व्यापक और तीव्र होने की स्थिति में इन देशों की जनता अपने हुक्मरानों के ख़िलाफ़ सड़कों पर उतरेगी। ऐसे में साम्राज्यवाद के लिए इज़रायली जनसंहार के हर बीतते दिन के साथ विकल्प कम होते जायेंगे।

भारत की जनता को, जो खुद उपनिवेशवाद का दंश 200 वर्षों तक झेल चुकी है, फ़िलिस्तीन की जनता के राष्ट्रीय संघर्ष का पुरज़ोर तरीक़े से पक्ष लेना चाहिए। इसका रिश्ता आपके मज़हब से कतई नहीं है। फ़िलिस्तीन में भी जनता किसी इस्लामी गणराज्य को बनाने के लिए नहीं लड़ रही है। उसकी आकांक्षाएँ तो एक सेक्युलर राज्य बनाने की हैं, जहाँ मुसलमान, ईसाई और यहूदी चैन से जनवाद और राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ रह सकें। आज इस संघर्ष के नेतृत्व में हमास के होने से भी इस क़ौमी आज़ादी की लड़ाई का चरित्र नहीं तय होता है। हमें हर मौके पर सेटलर उपनिवेशवादी प्रोजेक्ट यानी इज़रायल के नरसंहारक प्रोजेक्ट का विरोध करना चाहिए। इसका रिश्ता केवल इस बात से है कि हम इन्साफ़ में यक़ीन करते हैं।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

फ़ासिस्ट प्रोपेगैण्डा फैलाती दंगाई फ़िल्में

● नौरीन

प्रोपेगैण्डा फ़िल्में बनाने का जो सिलसिला बीसवीं सदी में हिटलर और मुसोलिनी के शासनकाल में शुरू हुआ था, मोदी सरकार के शासनकाल में अपनी पराकाष्ठा पर जा पहुँचा है। हमें इस मुग़ालते में नहीं रहना चाहिए कि ये सड़ चुकी पूँजीवादी व्यवस्था महज़ प्रतिरोध की आवाज़ों का दमन करके टिकी हुई है। ये लुटेरी व्यवस्था अपने विचारों और संस्कृति के दम पर भी लोगों को मानसिक रूप से अपंग बनाने पर भी टिकी हुई है। अपनी प्रोपगैण्डा मशीनरी के ज़रिये मोदी सरकार ने जनता के दिलो-दिमाग़ पर चौतरफ़ा हमला बोला है। व्यापक मेहनतकश जनता अधूरी और ग़लत जानकारी की अँधेरी काल-कोठरी में क़ैद कर दी गयी है। आज सूचना के सभी तन्त्रों एवं संस्थानों पर फ़ासीवादी मोदी सरकार का एकाधिकार है। मनोरंजन और जानकारी के नाम पर लोगों को फ़ासिस्ट प्रोपेगैण्डा का प्रचार-प्रसार करने वाली फ़िल्में बिना किसी लाग-लपेट के परोसी जा रही हैं, जिसका एकमात्र मक़सद लोगों के बीच में नफ़रत और दंगे की राजनीति को बढ़ावा देना है।

2014 के बाद फ़ासिस्ट प्रोपेगैण्डा फ़िल्मों की बाढ़

मोदी सरकार ने अपनी साम्प्रदायिक फ़ासीवादी विचारधारा को जनमानस तक फैलाने के लिए फ़िल्मों का इस्तेमाल औज़ार के रूप में किया है। ख़ास तौर पर 2014 के बाद से प्रोपेगैण्डा फ़िल्मों की बाढ़-सी आयी है। **उरी : द सर्जिकल स्ट्राइक, द एक्सिडेन्टल प्राइम मिनिस्टर, केरला स्टोरी, द कश्मीर फाइल्स, आर.आर.आर., जेएनयू, बस्तर : द नक्सल स्टोरी, मैं अटल हूँ, स्वातन्त्रयवीर सावरकर , पी.एम. नरेन्द्र मोदी, द वैक्सीन वार, द साबरमती रिपोर्ट, आर्टिकल 370, रज़ाकार, द साइलेंट जेनोसाइड ऑफ़ हैदराबाद, आदि।** इस तरीक़े की प्रोपेगैण्डा फ़िल्मों की फ़ेहरिस्त बहुत लम्बी है जिनका एकमात्र मक़सद मोदी सरकार की साम्प्रदायिक फ़ासीवादी विचारधारा का प्रचार-प्रसार है। इन फ़िल्मों ने बड़े सलीक़े से, तथ्यों और ऐतिहासिक सच्चाइयों को तोड़-मरोड़कर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की नफ़रती विचारधारा को आम लोगों के बीच में बैठाने का काम किया है। सरकारी संस्थाओं का योजनाबद्ध तरीक़े से इस्तेमाल करके इन प्रोपेगैण्डा फ़िल्मों द्वारा लोगों के दिमाग में मुसलमानों और दलितों के खिलाफ़ ज़हर घोला जा रहा है। एक उन्मादी भीड़ तैयार की जा रही है जिनका इस्तेमाल समय-समय पर संघ परिवार दंगों में करता है।

लेकिन यह भी सच है कि जैसे-जैसे मोदी सरकार रोज़गार, महँगाई को कम करने आदि के मोर्चे पर नाक़ामयाब हो रही है, वैसे-वैसे ये प्रोपेगैण्डा फ़िल्में भी असफल हो रही हैं। वजह स्पष्ट है : भूखे आदमी को फ़िल्मों के ज़रिये कितना भी बता दिया जाये कि वह भूखा नहीं है, वह जानता है कि भूख का मतलब क्या होता है। लेकिन फिर भी ये प्रोपेगैण्डा फ़िल्में समाज के एक हिस्से को प्रभावित करती हैं, झूठ का प्रचार करती हैं, इतिहास को विकृत करती हैं और पूरे समाज को राजनीतिक तौर पर अनपढ़ बनाने का प्रयास करती हैं और ठीक इसीलिए ये ख़तरनाक हैं और इनकी सच्चाई को समझने की आवश्यकता है।

यह अनायास नहीं है कि *दि कश्मीर फाइल्स, केरला स्टोरी* जैसी घटिया फ़िल्मों को न सिर्फ़ सरकार द्वारा टैक्स फ्री किया जाता है बल्कि पूरे सरकारी तन्त्र को इसके प्रचार-प्रसार में लगा दिया जाता है। क्या आपने कभी सोचा है कि ऐसा क्यों है? इसका ज़वाब सीधा है, ये वे फ़िल्में है जो सीधे तौर पर मोदी सरकार के साम्प्रदायिक फ़ासीवादी एजेण्डे का प्रचार करती है। यह फ़िल्में लोगों को उनके जीवन की सभी समस्याओं के लिए एक नक़ली दुश्मन देती है जैसा कि आमतौर पर फ़ासीवादी शक्तियाँ करती हैं। **ये फ़िल्में हमारी भावनाओं के साथ खेलती हुई ना जाने कब हमें एक दूसरे का दुश्मन बना देती हैं, और हमें पता भी नहीं चलता।** आप खुद अपने अनुभव से बताइये कि क्या इन फ़िल्मों को देखते हुए कई बार आप थोड़ी देर के लिए ही सही, इसके झूठ को सच नहीं मान लेते? यही तो है फ़ासीवाद का चरित्र जो हमेशा लोगों को उनकी सारी समस्याओं के लिये एक नक़ली दुश्मन देता है। यह दुश्मन अलग-अलग परिस्थितियों के अनुसार कभी अल्पसंख्यक, कभी दलित तो कभी कम्युनिस्ट होते हैं।

इन प्रोपेगैण्डा फ़िल्मों के ख़तरनाक चरित्र का अन्दाज़ा हम इसी से लगा सकते हैं कि ठीक इसी तरह की फ़िल्में जर्मनी में हिटलर के दौर में भी बनायी गयीं जिन्होंने यहूदियों को एक दुश्मन के रूप में पेश किया। आम यहूदियों के नरसंहार के लिए समाज में फ़िरकापरस्त किस्म का माहौल तैयार करने में इन फ़िल्मों की भी एक भूमिका थी।

प्रोपेगैण्डा फ़िल्मों की असलियत

वैसे तो इन फ़िल्मों को पहली नज़र में ही देखकर समझ में आ जाता है इनकी पक्षधरता क्या है। क्योंकि इनके मुद्दे भी ठीक वही हैं जिन मुद्दों के दम पर भाजपा अपनी चुनावी रोटियाँ सेकती है। मसलन लव जिहाद, हिन्दू-मुसलमान, धारा 370, चीन, पाकिस्तान वग़ैरह-वग़ैरह।

ये प्रोपेगैण्डा फ़िल्में मिथकों को यथार्थ बनाकर, झूठ को सच की चाशनी में डुबोकर बड़े ही बारीक़ी से लोगों के सामने पेश करती है। इतिहास के वास्तविक तथ्य इनके लिए कोई मायने नहीं रखते। यह एक झूठी गल्पकथा को इतिहास के रूप में पेश करती हैं। कुछ उदाहरणों से समझते हैं।

द केरला स्टोरी जैसी फ़िल्मों को ध्यान से देखे तो पता चलेगा कि ये एक निहायत घटिया किस्म के झूठों पर आधारित फ़िल्म है, जिसका ऐतिहासिक तथ्यों से कोई लेना-देना नहीं है। इसमें औरतों को "बैल बुद्धि" के रूप में पेश किया गया है जिनके पास अपनी सोचने-समझने की क्षमता नहीं होती है, जो आसानी से किसी के बहकावे में आ जाती हैं। वास्तव में तो यही आरएसएस की विचारधारा है जो यह मानता है कि औरतें और कुछ नहीं महज़ बच्चा पैदा करने की मशीन और उपभोग की वस्तु है। उनको हमेशा एक स्वामी या मालिक की ज़रूरत होती है, जो उनकी देखभाल करे। इस फ़िल्म में 'लव जिहाद' के बारे में किये जा रहे झूठे प्रचार को आधार बनाया गया है, जिसके ज़रिये आम हिन्दू जनता के बीच में एक नक़ली डर फैलाया जाता है कि मुसलमान "उनकी औरतों" को भगा ले जायेंगे या उठा ले जायेंगे। अगर आप वास्तव में स्वयं सरकारी आँकड़े उठाकर देखेंगे तो पायेंगे कि 'लव जिहाद' का पूरा मसला ही फ़र्ज़ी है। जहाँ दो अलग धर्मों के वयस्क व्यक्ति अपनी इच्छा से प्यार या शादी करें, उसमें दख़ल देने का हक़ न तो किसी व्यक्ति को है, न संगठन को है, न सरकार को है और न ही समाज को। यह तो उनका व्यक्तिगत मसला है। मज़दूर हमेशा लोगों के जनवादी अधिकार का समर्थन करते हैं और इस मामले में भी वे समाज के सबसे उन्नत वर्ग होते हैं।

अब जरा भाजपा के 'लव जिहाद' की असलियत भी जान लेते हैं। इस पार्टी के नेता शाहनवाज़ हुसैन और मुख़्तार अब्बास नक़वी मुसलमान हैं जिन्होंने हिन्दू लड़की से शादी की है। भाजपा नेता सुब्रमण्यम स्वामी की बेटी की शादी एक मुस्लिम लड़के से हुई है। लेकिन विश्व हिन्दू परिषद, बजरंग दल के गुण्डे उनके घरों पर कोई हमला नहीं करते। कोई हो-हल्ला नहीं मचाते। क्योंकि वे भी जानते हैं कि 'लव जिहाद' की नौटंकी केवल जनता को आपस में लड़वाने के लिए है।

ऐसी ही एक फ़िल्म आयी थी 'द कश्मीर फ़ाइल्स'। इसमें दावा किया गया कि यह कश्मीरी पण्डितों के दर्द को बयाँ करती है। लेकिन फ़िल्म देखने से पता चलता है कि कश्मीरी पण्डित तो महज़ बहाना है, असली निशाना तो देश की आम मेहनतकश जनता है जिसके बीच में हिन्दू-मुसलमान के झगड़े का ज़हर घोलकर उन्हें एक-दूसरे का दुश्मन बनाना है। यह फ़िल्म कश्मीरी पण्डितों का इस्तेमाल मोदी सरकार की नफ़रती, उन्मादी और साम्प्रदायिक नीति के लिए माहौल तैयार करने के लिये करती है। यह फ़िल्म भी झूठों से भरी हुई है, कश्मीरी पण्डितों के वहाँ से पलायन के आँकड़ों को, उनके प्रति (कश्मीरी जनता द्वारा नहीं!) कुछ इस्लामी कट्टरपन्थियों द्वारा की गयी ज़्यादतियों को भी बेहद बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया गया है, जिनका असर ही कश्मीरी समाज में कुछ समय के लिए इसलिए बढ़ा था, क्योंकि भारतीय राज्यसत्ता द्वारा कश्मीरी क़ौम के दमन के विरुद्ध चले आन्दोलन में इस्लामी फ़िरकापरस्त सोच का असर पैदा हो गया था। लेकिन वास्तव में कश्मीरी समाज में आज भी फ़िरकापरस्ती की भावना नगण्य है और जो भड़काई जा रही है, वह आज संघ परिवार द्वारा ही भड़कायी जा रही है। समूची कश्मीरी जनता के लिए, चाहे वे मुसलमान हों या हिन्दू, क़ौमी दमन का मसला सबसे अहम और साझा मसला है।

ये फ़ासिस्ट फ़िल्में और कुछ नहीं है बल्कि मेहनतकश जानता का ध्यान भटकाने का एक हथकण्डा मात्र है। पिछले 10 सालों से महँगाई और बेरोज़गारी का बुलडोज़र जिस तरीक़े से देश की जनता को रौंद रहा है उसके ख़िलाफ़ लोग एकजुट और संगठित ना हो जायें इसके लिए समय-समय पर कभी लव जिहाद, कभी धारा 370, कभी चीन-पाकिस्तान का हौवा उछाल दिया जाता है। और मोदी की गोदी में बैठे विवेक अग्निहोत्री और सुदिप्तो सेन जैसे "फ़िल्मकार" फ़िल्म बनाकर झूठा फासिस्ट प्रोपेगैण्डा फैलाने का काम शुरू कर देते हैं।

प्रोपेगैण्डा फ़िल्मों को बढ़ावा: साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति का एक हिस्सा

आज कोई भी फ़िल्म देखने से पहले हमें दो बातों पर ग़ौर करना चाहिए। पहला इस फ़िल्म के आने का समय क्या है? और दूसरा इस फ़िल्म को बनाने के लिए करोड़ों रुपये कहाँ से आ रहा है और कौन दे रहा है?

क्या यह महज़ इत्तेफ़ाक है कि इस तरीक़े की प्रोपेगैण्डा फ़िल्में ज़्यादातर ऐसे समय पर आती हैं जब देश में चुनाव का माहौल होता है? या फिर ऐसे समय में आती हैं जब देश में सरकार के खिलाफ़ गुस्सा बढ़ रहा हो और लोग अपने जीवन के वास्तविक मुद्दों को लेकर एकजुट और संगठित हो रहे हों? ऐसी स्थिति में उनका ध्यान से भटकाने के लिए *दि कश्मीर फ़ाइल्स, उरी दि सर्जिकल स्ट्राइक, दि एक्सीडेण्टल प्राइम मिनिस्टर* जैसी प्रोपेगैण्डा फ़िल्मों को ले आया जाता है।

मोदी सरकार द्वारा धड़ल्ले से ऐसी फ़िल्मों को बढ़ावा दिया जा रहा है बल्कि अमित शाह फ़िल्मकारों की हाज़िरी लगवाकर ऐसी फ़िल्में बनवा रहा है, जो संघ परिवार और मोदी सरकार की साम्प्रदायिक फ़ासीवाद की विचारधारा से मेल खाती हों।

ऐसी फ़िल्मों की फेहरिस्त बहुत लम्बी है जिसे या तो भाजपा से जुड़े लोगों ने फ़ण्ड किया है या फिर उसके नेताओं ने प्रमोट किया है। कुछ उदाहरण देखें।

भारतीय चित्र साधना (बीसीएस) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़ा संगठन है। इसने 23 से 25 फ़रवरी 2024 तक भाजपा-शासित हरियाणा में फ़िल्म महोत्सव आयोजित किया। महोत्सव का उद्घाटन हरियाणा के मुख्यमन्त्री मनोहर लाल खट्टर ने किया था और केन्द्रीय मन्त्री अनुराग ठाकुर पुरस्कार समारोह के अध्यक्ष थे। इसमें कई फ़िल्म निर्माताओं ने हिस्सा लिया जिन्होंने हाल ही में मोदी सरकार की फ़ासिस्ट विचारधारा समर्थित फ़िल्में बनायी थीं, जैसे विवेक अग्निहोत्री (*दि कश्मीर फ़ाइल्स* के निर्देशक), विपुल शाह (*केरला स्टोरी* और *बस्तर दि नक्सल स्टोरी* के निर्माता) और सुदीप्तो सेन (*केरला स्टोरी* और *बस्तर द नक्सल स्टोरी* के निर्देशक)।

अभी हाल ही में एक फ़िल्म आयी थी जिसका नाम था **स्वातन्त्र्यवीर सावरकर।** यह फ़िल्म सावरकर को एक "हीरो" की तरह पेश करती है जबकि हम जानते हैं कि सावरकर वही व्यक्ति है जिसने अंग्रेज़ों की सज़ा से बचने के वास्ते कई बार माफ़ीनामे लिखे थे और आज़ादी की लड़ाई में शामिल होने के बजाय हिन्दू-मुसलमान को आपस में लड़ाने के विचारों को फैलाया था। इसी सेवा के बदले आज़ादी तक सावरकर को अंग्रेज़ों ने पेंशन दी थी। इस फ़िल्म के निर्माताओं में से एक आनन्द पण्डित है जो खुद कह चुका है कि वह 30 वर्षों से भाजपा का सदस्य है। **आनन्द पण्डित नरेन्द्र मोदी पर बनी फ़िल्म का भी निर्माता था जो 2019 में लोकसभा चुनाव से ठीक पहले रिलीज़ हुई थी।**

रज़ाकार तेलुगू भाषा में बनी एक प्रोपेगैण्डा फ़िल्म है, जिसका निर्माण गुड्डू नारायण रेड्डी ने किया है। रेड्डी **तेलंगाना में भाजपा की कार्यकारी समिति का हिस्सा है।** यह फ़िल्म तेलंगाना में निज़ाम के रज़ाकारों द्वारा हिन्दू-मुसलमान दोनों ही किसानों के सामन्ती शोषण की वर्गीय सच्चाई को साम्प्रदायिक रंग देती है, क्योंकि यहाँ पर सामन्तों के वर्ग की अगुवाई मुसलमान निज़ाम कर रहा था! जबकि सच्चाई यह है कि इस सामन्ती उत्पीड़न के ख़िलाफ़ हिन्दू और मुसलमान दोनों ही किसानों ने संघर्ष किया था और धर्म उनके लिए कोई मसला था ही नहीं।

जहाँगीर नेशनल यूनिवर्सिटी (जेएनयू) जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले छात्रों को, विशेष तौर पर, जो जनवादी, सेक्युलर और प्रगतिशील हैं, देशद्रोही के तौर पर दिखलाने के लिए बनायी गयी एक झूठे प्रोपेगैण्डा की फ़िल्म है। इस फ़िल्म को बनाने वाली कम्पनी के निर्देशकों

(पेज 12 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016